श्री सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० १०२

सोलह सती

प्रकाशक
अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था
बीकानेर

वीर संवत् २४६९
विक्रम १९९९

मूल्य सवा रुपया

प्रथमावृत्ति
३०० प्रति

सेठिया प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर ता० १-७-४२

विषय सूची

सोलह सती

आदि नाथ आदि जिन वर वंदी, सफल मनोरथ कीजिये ।
प्रभाते उठि मांगलिक कामे, सोल सतीना नाम लीजिये ॥ १ ॥
बालकुमारी जगहितकारी, ब्राह्मी भरतनी बहेनड़ी ए ।
घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोल सतीमाँ जे वड़ी ए ॥ २ ॥
बाहुबल भगिनी सतीय शिरोमणि, सुन्दरी नामे ऋषभ सुता ए ।
अंक स्वरूपी त्रिभुवन माँहे, जेह अनुपम गुण जुता ए ॥ ३ ॥
चन्दन बाला बालपणे थी, शीयलवती शुद्ध श्राविका ए ।
उड़दना बाकला वीर प्रति लाभ्या, केवल लही व्रत भाविका ए ॥४॥
उग्रसेन धुया धारिणी नंदिनी, राजीमति नेम वल्लभा ए ।
जोवन वेशे कामने जीत्यो, संजम लइ देव दुल्लभा ए ॥ ५ ॥
पञ्च भरतारी पाण्डव नारी, द्रुपद तनया वखाणीये ए ।
एक सौ आठे चीर पुराणा, शीयल महिमा तस जाणिये ए ॥ ६ ॥
दशरथ नृपनी नारी निरुपम, कौशल्या कुल चन्द्रिका ए ।
शीयल सलूणी राम जनेता, पुण्य तणी प्रणालिका ए ॥ ७ ॥
कोशांविक ठामे संतानिक नामे, राज करे रंग राजियो ए ।
तस घर घरणी मृगावती सती, सुर भुवने जस गाजियो ए ॥ ८ ॥
सुलसा सांची शियले न काची, राची नहीं विषय रसे ए ।
मुखडुँ जोतां पाप पलाये, नाम लेतां मन हुलसे ए ॥ ९ ॥
राम रघुवंशी तेहनी कामिनी, जनक सुता सीता सतीए ।
जग सहू जाणे धीज करंता, अनल शीत थयो शीयलथी ए ॥ १० ॥
काचे तांतणे चालणी बांधी, कूवा थकी जल काढीयूँ ए ।
कलंक उतारवा सती ए सुभद्रा, चम्पा बार उघाड़िया ए ॥११॥
सुर नर वन्दित शियल अखण्डित, शिवा शिव पद गामिनी ए ।
जेहने नामे निर्मल थइये, बलिहारी तस नामनी ए ॥ १२ ॥

हस्तिनागपुरे पांडु रायनी, कुंता नामे कामिनी ए ।
पाण्डव माता दसे दसार्णनी, बहेन पतिव्रता पद्मिनी ए ॥ १३ ॥
शीलवती नामे शीलव्रत धारिणी, त्रिविधे तेहने वंदिये ए ।
नाम जंपता पातक जाए, दरिसण दुरित निकंदीये ए ॥ १४ ॥
निषधा नगरी नल नरिंदनी, दमयन्ती तस गेहिनी ए ।
संकट पड़तां शीयल राख्यूँ, त्रिभुवन कीर्ति जेहनी ए ॥ १६ ॥
अनंग अजीता जग जन पूजिता, पुष्पचूला ने प्रभावती ए ।
विश्व विख्याता कामने दमता, सोलमी सती पद्मावती ए ॥१६॥
वीरे भाखी शास्त्रे साखी, उदय रतन भाखे मुदा ए ।
भान उगंतां जे नर भणशे, ते लेशे सुख संपदा ए ॥ १७ ॥

देव दाणव गन्धव्वा,
जक्खरक्खस किन्नरा ।
बम्भयारिं नमंसंति,
दुक्करं जे करन्ति तं ॥

(उत्तराध्ययन १६ वाँ अध्ययन)

सोलह सती

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता सुभद्रा शिवा ॥
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि ।
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥

अर्थात्—ब्राह्मी, चन्दनबाला, राजीमती, द्रौपदी, कौशल्या, मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवा, कुन्ती, दमयन्ती, चूला, प्रभावती, पद्मावती और सुन्दरी प्रतिदिन हमारा मंगल करें।

ब्राह्मी

महाविदेह क्षेत्र में पुँडरीकिणी नाम की नगरी थी। वहाँ वैर नाम का चक्रवर्ती राजा राज्य करता था। उसने अपने चार छोटे भाइयों के साथ भगवान् वैरसेन नाम के तीर्थङ्कर के पास वैराग्य पूर्वक दीक्षा अंगीकार की।

महामुनि वैर कुछ दिनों में शास्त्र के पारंगत हो गए। भगवान्

के द्वारा गच्छपालन में नियुक्त किए जाने पर वे पाँच सौ साधुओं के साथ विहार करने लगे। उनके एक भाई का नाम बाहु था। बाहु मुनि लब्धि वाले और उद्यमी थे। वे दूसरे साधुओं की अशन पान आदि के द्वारा सेवा किया करते थे। दूसरे भाई का नाम सुबाहु था। सुबाहु मुनि मन में बिना ग्लानि के स्वाध्याय आदि से थके हुए साधुओं की पगचाँपी आदि द्वारा वैयावच्च किया करते थे। तीसरे और चौथे भाई का नाम पीठ और महापीठ था। वे दिन रात शास्त्रों के स्वाध्याय में लगे रहते थे।

एक दिन आचार्य ने बाहु और सुबाहु की प्रशंसा करते हुए कहा—ये दोनों साधु धन्य हैं जो दूसरे साधुओं की धार्मिक क्रियाओं को अच्छी तरह पूरा कराने के लिए सदा तैयार रहते हैं। यह सुन कर पीठ और महापीठ मन में सोचने लगे– आचार्य महाराज ने लोक व्यवहार के अनुसार यह बात कही है क्योंकि लोक में दूसरे का काम करने वाले की ही प्रशंसा होती है। बहुत बड़ा होने पर भी जो व्यक्ति दूसरे के काम नहीं आता वह कुछ नहीं माना जाता, मन में ऐसा विचार आने से उन्होंने स्त्री जातिनामकर्म को बाँध लिया। आयुष्य पूरी होने पर वे पाँचों भाई सर्वार्थसिद्ध विमान में गए। वहाँ से चव कर वैर चक्रवर्ती का जीव भगवान् ऋषभ देव के रूप में उत्पन्न हुआ। बाहु और सुबाहु भरत और बाहुबली के रूप में उत्पन्न हुए। बाकी दो अर्थात् पीठ और महापीठ ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप में उत्पन्न हुए। (पंचाशक सोलहवाँ)

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। वर्तमान हुंडावसर्पिणी के तीसरे आरे के अन्त में वहाँ नाभि राजा नाम के पन्द्रहवें कुलकर हुए। उनके पुत्र भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर, प्रथम राजा, प्रथम धर्मोपदेशक और प्रथम धर्म चक्र-वर्ती थे। उनकी माता का नाम मरुदेवी था। युगलधर्म का उच्छेद

हो जाने पर पहले पहल उन्होंने ही व्यवस्था की थी। उन्होंने ही पहले पहल कर्ममार्ग का उपदेश दिया था। उन्हीं के शासन में यह देश अकर्मभूमि (भोग भूमि) से बदल कर कर्मभूमि बना।

उनके दो गुणवती रानियाँ थीं। एक का नाम था सुमंगला और दूसरी का नाम सुनन्दा।

एक बार रात के चौथे पहर में सुमंगला रानी ने चौदह महा-स्वप्न देखे। स्वप्न देखते ही वह जग गई और सारा हाल पति को कहा। पति ने बताया कि इन स्वप्नों के फल स्वरूप तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति होगी। यह सुन कर सुमंगला को बड़ी प्रसन्नता हुई। गर्भवती स्त्री के लिए बताए गए नियमों का पालन करती हुई वह प्रसन्नता पूर्वक दिन बिताने लगी।

वैद्यक शास्त्र में लिखा है– गर्भवती स्त्रियों को बहुत गरम, बहुत ठंडा, गरम मसालों वाला, तीखा, खारा, खट्टा, सड़ा गला, भारी और पतला भोजन न करना चाहिए। अधिक हँसना, बोलना, सोना, जागना, चलना, फिरना, ऐसी सवारी पर बैठना जिस पर शरीर को कष्ट हो, अधिक खाना, बार बार अंजन लगाना, थक जाय ऐसा काम करना, अयोग्य नाटक तथा खेल तमाशे देखना, प्रतिकूल हँसी खेल करना, ये सभी बातें गर्भवती के लिये वर्जित हैं। इनसे गर्भस्थ जीव में किसी प्रकार की खामी होने का डर रहता है।

गर्भवती स्त्री को मन की घबराहट और थकावट के बिना जितनी देर प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक हो सके ऐसी पुस्तकें या जीवन चरित्र पढ़ने चाहिएं जिन से शिक्षा मिले। सदा रुचिकारक और गर्भ को पुष्ट करने वाला आहार करना चाहिए। धर्मध्यान, दया दान और सत्य वगैरह में रुचि रखनी चाहिए। शरीर पर स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिए और चित्त में उत्तम विचार रखने

चाहिएं। माता के रहन सहन, भोजन और विचारों का गर्भ पर पूरा असर होता है, इस लिए माता को इस प्रकार रहना चाहिए जिससे स्वस्थ, सुन्दर और उत्तम गुणों वाली सन्तान उत्पन्न हो।

सुमंगला रानी ने अपनी सन्तान को श्रेष्ठ और सद्गुण सम्पन्न बनाने के लिए ऊपर कहे हुए नियमों का अच्छी तरह पालन किया। गर्भ का समय पूरा होने पर शुभ समय में सुमंगला रानी के पुत्र और पुत्री का जोड़ा उत्पन्न हुआ।

सुनन्दा रानी ने भी ~~ऊपर कहे हुए चौदह स्वप्नों में से चार महा-स्वप्न देखे।~~ गर्भकाल पूरा होने पर ~~उसने भी~~ पुत्र पुत्री के जोड़े को जन्म दिया। इसके बाद सुमंगला रानी ने पुत्रों के उनचास जोड़ों को जन्म दिया। इस प्रकार आदि राजा ऋषभदेव के सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं।

सुमंगला देवी ने जिस जोड़े को पहले पहल जन्म दिया उसमें पुत्र का नाम भरत और पुत्री का नाम ब्राह्मी रक्खा गया। सुनन्दा देवी के पुत्र का नाम बाहुवली और पुत्री का नाम सुन्दरी रक्खा गया।

पुत्र और पुत्री जव सीखने योग्य उमर के हुए तो उनके पिता ऋषभदेव ने अपने उत्तराधिकारी भरत को सभी प्रकार की शिल्प-कला, ब्राह्मी को १८ प्रकार की लिपिविद्या और सुन्दरी को गणित विद्या सिखाई। भरत को पुरुष की ७२ कलाएं और ब्राह्मी को स्त्री की ६४ कलाएं सिखाईं।

ऋषभदेव बीस लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे। इसके बाद त्रेसठ लाख पूर्व तक राज्य किया। एक लाख पूर्व आयुष्य बाकी रहने पर अर्थात् तेरासी लाख पूर्व की आयु होने पर उन्होंने राज्य का कार्य भरत को सम्भला दिया। बाहुवली आदि निन्यानवें पुत्रों को भिन्न भिन्न देशों का राज्य दे दिया। एक वर्ष तक बरसी दान देकर दीक्षा अंगीकार की। एक वर्ष की कठोर तपस्या के

बाद उनके चारों घाती कर्म नष्ट होगए और उन्होंने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया अर्थात् वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होगए। संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने धर्मोपदेश देना शुरू किया। भगवान् की पहली देशना में भरत महाराज के पाँच सौ पुत्र और सात सौ पौत्रों ने वैराग्य प्राप्त किया और भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार कर ली।

विहार करते करते भगवान् अयोध्या में पधारे। भरत चक्रवर्ती को यह जान कर बड़ा हर्ष हुआ। ब्राह्मी, सुन्दरी तथा दूसरे परिवार के साथ भरत चक्रवर्ती भगवान् को वन्दना करने के लिए गए। धर्म कथा सुन कर सब के चित्त में अपार आनन्द हुआ। भगवान् ने कहा– विषय भोगों में फंस कर अज्ञानी जीव अपने स्वरूप को भूल जाते हैं। जो प्राणी अपना स्वरूप समझ कर उसी में लीन रहता है, सांसारिक विषयों से विरक्त होकर धर्म में उद्यम करता है वही कर्मबन्ध को काट कर मोक्ष रूपी अनन्त सुख को प्राप्त करता है। सांसारिक सुख क्षणिक तथा भविष्य में दुःख देने वाले हैं। मोक्ष का सुख सर्वोत्कृष्ट तथा अनन्त है इस लिए भव्य प्राणियों को मोक्ष प्राप्ति के लिये उद्यम करना चाहिए।

ब्राह्मी भगवान् के उपदेश को बड़े ध्यान से सुन रही थी। उस के हृदय में उपदेश गहरा असर कर रहा था। धीरे धीरे उसका मन संसार से विरक्त होकर संयम की ओर झुक रहा था।

सभा समाप्त होने पर ब्राह्मी भगवान् के पास आई और वन्दना करके बोली– भगवन्! आपका उपदेश सुन कर मेरा मन संसार से विमुख हो गया है। मुझे अब किसी वस्तु पर मोह नहीं रहा है। इस लिये दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। संसार के बन्धन मुझे बुरे लगते हैं। मैं उन्हें तोड़ डालना चाहती हूँ। भगवान् ने फरमाया– ब्राह्मी! इस कार्य के लिये भरत महाराज की आज्ञा लेना आवश्यक

है उनकी आज्ञा मिलने पर मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।

ब्राह्मी भरत के पास आई। उसके सामने अपनी दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। भरत ने साधुओं के कठिन मार्ग को बता कर ब्राह्मी को दीक्षा न लेने के लिये समझाना शुरू किया किन्तु ब्राह्मी अपने विचारों पर दृढ रही। भरत ने जब अच्छी तरह समझ लिया कि ब्राह्मी अपने निश्चय पर अटल है, उसे कोई भी विचलित नहीं कर सकता तो उसने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। भरत महाराज ब्राह्मी को साथ लेकर भगवान् के पास आए और कहने लगे–

भगवन्! मेरी बहिन ब्राह्मी दीक्षा अंगीकार करना चाहती है। इसने योग्य शिक्षा प्राप्त की है। संसार में रहते हुए भी विषय वासना से दूर रही है। सब प्रकार की सुख सामग्री होने पर भी इसका मन विषय भोगों में नहीं लगता। आपका उपदेश सुन कर इसका संसार से मोह हट गया है। यह जन्म, जरा और मृत्यु के दुःखों से छुटकारा पाना चाहती है, इसी लिए इसने दीक्षा लेने का निश्चय किया है। दीक्षा का मार्ग कठोर है, यह बात इसे अच्छी तरह मालूम है। इसमें दुःख और कष्टों को सहन करने की पर्याप्त शक्ति है। संयम अंगीकार करने के बाद यह चारित्र का शुद्ध पालन करेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसकी दीक्षा के लिए मेरी आज्ञा है। इसे दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। मैं आपको अपनी बहिन की भिक्षा देता हूँ, इसे स्वीकार करके मुझे कृतकृत्य कीजिए।

सब के सामने भरत महाराज के ऐसा कहने पर भगवान् ने ब्राह्मी को दीक्षा दे दी।

सुन्दरी

ब्राह्मी को दीक्षित हुई जान कर सुन्दरी की इच्छा भी दीक्षा लेने की हुई किन्तु अन्तराय कर्म के उदय से भरत ने उसे आज्ञा न दी। आज्ञा न मिलने से वह संयम अंगीकार न कर सकी।

द्रव्य संयम न लेने पर भी उसका अन्तः करण भाव संयममय था।

थोड़े दिनों बाद भरत छः खंड साधने के लिए दिग्विजय पर चले गए। सुन्दरी ने गृहस्थ वेश में रहते हुए भी कठोर तप करने का निश्चय किया। उसी दिन से छः विगयों का त्याग करके प्रति दिन आयम्बिल करने लगी। छः खंड साधने में भरत को साठ हजार वर्ष लग गए। सुन्दरी तब तक बराबर आयम्बिल करती रही। उसका शरीर बिल्कुल सूख गया। केवल अस्थि पंजर रह गया।

भरत महाराज छः खंड साध कर वापिस लौटे। सुन्दरी के कृश शरीर को देख कर उन्हें निश्चय हो गया कि उसके हृदय में वैराग्य ने घर कर लिया है। वह अपने दीक्षा लेने के निश्चय पर अटल है। भरत चक्रवर्ती अपने मन में सोचने लगे—

बहिन सुन्दरी को धन्य है। आत्मकल्याण के लिए इसने घोर तप अंगीकार किया है। ऐसी सुलक्षणा देवियाँ अपने शरीर से मोक्ष रूपी परम पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं और भोगों की इच्छा वाले भोले प्राणी इसी शरीर के द्वारा दुर्गति के कर्म बाँधते हैं। यह शरीर तो रोग, चिन्ता, मल, मूत्र, श्लेष्म वगैरह गन्दे पदार्थों का घर है। अतर वगैरह लगा कर इसे सुगन्धित बनाने का प्रयत्न करना मूर्खता है। गन्दे शरीर के लिये गर्व करना अज्ञानता है। मेरी बहिन को धन्य है जो शरीर और धन दौलत की अनित्यता का खयाल करके मायावी सांसारिक भोगों में नहीं फँसी और नित्य और अखंड सुख देने वाले संयम को अंगीकार करना चाहती है। सुन्दरी पहले भी दीक्षा लेने को तैयार हुई थी, किन्तु मैंने उसके इस कार्य में बाधा देकर उसे रोक दिया था किन्तु सुन्दरी ने अपने इस तप द्वारा अब मुझे भी सावधान कर दिया है। वास्तव में संसार के क्षणिक सुखों में कोई सार नहीं है। यह सब जानते हुए भी आज मेरी अवस्था ऐसी नहीं है कि मैं दीक्षा

अङ्गीकार कर सकूँ। सुन्दरी सहर्ष दीक्षा ले सकती है। सुन्दरी को इस सुकार्य से रोकना न तो उचित है और न इसकी कोई आवश्यकता ही है। अब मैं इसके लिए उसे सहर्ष आज्ञा दे दूँगा।

जिस समय भरत ने यह निश्चय किया, संयोग वश उसी समय तरण तारण, जगदाधार, प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदि जिनेश्वर विचरते हुए अयोध्या में पधारे और नगर के बाहर एक उद्यान में ठहर गए।

वनपाल द्वारा भरत को यह समाचार मालूम होते ही वे स्वजन, परिजन और पुरजन सहित बड़े ठाठ बाठ के साथ प्रभु को वन्दना करने के लिए उस उद्यान में गए। वहाँ पहुँचते ही छत्र, चमर शस्त्र, मुकुट और जूते इन पाँच वस्तुओं को अलग रख कर उन्होंने जिनेश्वर भगवान् को भक्तिपूर्वक वन्दन किया। इसके बाद उन का धर्मोपदेश सुनने के लिए वे भी अन्यान्य श्रोताओं के साथ वहीं बैठ गए। भगवान् उस समय बहुत ही मधुर शब्दों में धर्मोपदेश दे रहे थे, उसे सुन कर भरत को बहुत ही आनन्द हुआ।

धर्मोपदेश समाप्त होने पर भरत ने भगवान् से नम्रतापूर्वक कहा– हे जगत्पिता! मेरी बहिन सुन्दरी आज से साठ हजार वर्ष पहले दीक्षा लेने को तैयार हुई थी, किन्तु मैंने उसके इस कार्य में बाधा देकर उसे दीक्षा लेने से रोक दिया था। उस समय मुझे भले बुरे का ज्ञान न था। अब मुझे मालूम होता है कि मेरा वह कार्य बहुत ही अन्यायपूर्ण था। निःसन्देह अपने इस कार्य से मैं पाप का भागी हुआ हूँ। हे भगवन्! मुझे बतलाइए कि मैं अब किस तरह इस पाप से मुक्त हो सकता हूँ।

जिनेश्वर भगवान् से यह निवेदन करने के बाद भरत ने सुन्दरी को दीक्षा लेने की आज्ञा देते हुए उससे क्षमा प्रार्थना की। सुन्दरी ने उनका यह पश्चात्ताप देख कर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा– मुझे दीक्षा लेने में जो विलम्ब हुआ है उसमें कर्मों का ही दोष है,

आपका नहीं, इस लिए आप को खिन्न होने या पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। वर्षा ऋतु में मूसलधार वृष्टि होने पर भी यदि पपीहा प्यासा ही रह जाता है तो यह उसके कर्मों का ही दोष है, मेघ का नहीं। वसन्त ऋतु में सभी लताएं और वृक्ष नए पत्ते और फल फूलों से लद जाते हैं। यदि उस समय करीर वृक्ष पल्लवित नहीं होता तो यह उसी का दोष है, वसन्त का नहीं। सूर्योदय होने पर सभी प्राणी देखने लगते हैं। यदि उस समय उल्लू की आँखें बन्द हो जाती हैं तो यह उसी का दोष है, सूर्य का नहीं। मेरे अन्तराय कर्म ने ही मेरी दीक्षा में बाधा दी थी, आपने नहीं। मैं इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं मानती।

इस प्रकार के अनेक वचन कह कर सुन्दरी ने भरत को शान्त किया। इसके बाद उसने उसी समय जिनेश्वर भगवान् के निकट दीक्षा ले ली। सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर सुन्दरी शुद्ध चारित्र का पालन करते हुए दुष्कर तप करने लगी।

जिस समय भरत ने छह खंड जीतने के लिए प्रस्थान किया उनके छोटे भाई बाहुबली तक्षशिला में राज्य कर रहे थे। बाहुबली को अपनी शक्ति पर विश्वास था। भरत के अधीन रहना उसे पसन्द न था। उसने सोचा— पूज्य पिताजी ने जिस प्रकार भरत को अयोध्या का राज्य दिया है, उसी प्रकार मुझे तक्षशिला का राज्य दिया है। जो राज्य मुझे पिताजी से प्राप्त हुआ है, उसे छीनने का अधिकार भरत को नहीं है। यह सोच कर उस ने भरत के अधीन रहने से इन्कार कर दिया। चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा से भरत ने बाहुबली पर चढ़ाई कर दी। बाहुबली ने भी अपनी सेना के साथ आकर सामना किया। एक दूसरे के रक्त की प्यासी बन कर दोनों सेनाएं मैदान में आकर डट गईं। एक दूसरे पर टूटने के लिए आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगीं।

इतने में इन्द्र ने स्वर्ग से आकर कहा– तुम लोग व्यर्थ सेना का संहार क्यों कर रहे हो ? अगर तुम्हें लड़ना ही है तो तुम दोनों पञ्च-युद्ध करो। दोनों भाइयों ने इन्द्र की बात को मान लिया। सेनाओं द्वारा लड़ने से होने वाले रक्तपात को व्यर्थ समझ कर पाँच प्रकार से मल्लयुद्ध करने का निश्चय किया। पहले के चार युद्धों में बाहुबली की जीत हुई, फिर मुष्टि युद्ध की बारी आई। बाहुबली की भुजाओं में बहुत बल था। उसे अपनी विजय पर विश्वास था। भरत के मुष्टिप्रहार को उसने समभाव से सह लिया। इसके बाद स्वयं प्रहार करने के लिए मुष्टि उठाई। उसी समय शक्रेन्द्र ने उसे पकड़ लिया और बाहुबली से कहा– बाहुबली! यह क्या कर रहे हो! बड़े भाई पर हाथ चलाना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुच्छ राज्य के लिए क्रोध के वशीभूत होकर तुम कितना बड़ा अनर्थ कर रहे हो, यह मन में सोचो।;

बाहुबली की मुष्टि उठी की उठी ही रह गई। उनके मन में पश्चात्ताप होने लगा। वे मन में सोचने लगे– 'जिस राज्य के लिए इस प्रकार का अनर्थ करना पड़े वह कभी सुखदायक नहीं हो सकता। इस लिए इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। वास्तविक सुख तो संयम से प्राप्त हो सकता है।' यह सोच कर उन्होंने संयम लेने का निश्चय कर लिया।

उठाई हुई मुष्टि को वापिस लेना अनुचित समझ कर बाहुबली उसी मुष्टि द्वारा अपने सिर का पंचमुष्टि लोच करके वन में चले गए। वहाँ जाकर ध्यान लगा लिया। अभी तक उनके हृदय से अभिमान दूर न हुआ था। मन में सोचा– मेरे छोटे भाइयों ने भगवान् के पास पहले से दीक्षा ले रक्खी है। ~~उन्हें केवलज्ञान भी हो गया है।~~ यदि मैं अभी भगवान् के दर्शनार्थ गया तो उन्हें भी वन्दना करनी पड़ेगी। यह सोच कर वे भगवान् को वन्दना

करने नहीं गए।

वन में ध्यान लगा कर खड़े खड़े उन्हें एक वर्ष बीत गया। पक्षियों ने कन्धों पर घोंसले बना लिए। लताएं वृक्ष की तरह चारों ओर लिपट गईं। सिंह, व्याघ्र, हाथी तथा दूसरे जंगली जानवर गुर्राते हुए पास से निकल गए किन्तु वे अपने ध्यान से विचलित न हुए। काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि आभ्यन्तर शत्रु उनसे हार मान गए किन्तु अहंकार का कीड़ा उनके हृदय से न निकला। छोटे भाइयों को वन्दना न करने का अभिमान उन के मन में अभी जमा हुआ था। इसी अभिमान के कारण उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने ज्ञान द्वारा बाहुबली का यह हाल जाना। उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी को बुला कर कहा—तुम्हारे भाई बाहुबली अभिमान रूपी हाथी पर चढ़े हुए हैं। हाथी पर चढ़े केवलज्ञान नहीं हो सकता। इस लिए जाओ और अपने भाई को अहंकार रूपी हाथी से नीचे उतारो।

भगवान् की आज्ञा को प्राप्त कर दोनों सतियाँ बाहुबली के पास आईं और कहने लगीं—

वीरा म्हारा गज थकी हेठा उतरो. गज चढ़्या केवल न होसी रे ।।टेक।।
बन्धव गज थकी उतरो, ब्राह्मी सुन्दरी इम भाषे रे।
ऋषभ जिनेश्वर मोकली, बाहुबल तुम पासे रे ।।
लोभ तजी संयम लियो, आयो बली अभिमानो रे।
लघु बन्धव बन्दूं नहीं, काउसग्ग रह्यो शुभ ध्यानो रे ।।
बरस दिवस काउसग्ग रह्या, बेलड़ियां लिपटानी रे।
पंखी माला मांडिया, शीत ताप सुखानी रे ।।

भाई बाहुबली! भगवान् ने अपना सन्देश सुनाने के लिए

हमें आपके पास भेजा है। आप हाथी पर चढ़े बैठे हैं। जरा नीचे उतरिए। आपने राज्य का लोभ छोड़ कर संयम तो धारण किया किन्तु छोटे भाइओं को वन्दना न करने का अभिमान आ गया। इसी कारण इतने दिन ध्यान में खड़े रहने पर भी आपको केवल ज्ञान नहीं हुआ। इस लम्बे और कठोर ध्यान से आपका शरीर कैसा कृश हो गया है। पक्षियों ने आपके कन्धों पर घोंसले बना लिए। डाँसों, मच्छरों और मक्खियों ने शरीर को चलनी बना दिया किन्तु आप ध्यान से विचलित न हुए। ऐसा उग्र तप करते हुए भी आपने अभिमान को आश्रय क्यों दे रक्खा है? यह अभिमान आपकी महान् करणी को सफल नहीं होने देता।

साध्वी वचन सुनी करी, चमक्या चित्त मझारो रे।
हय, गय, रथ, पायक छांडिया, पर चढियो अहंकारो रे॥
वैरागे मन वालियो, मूक्यो निज अभिमानो रे।
चरण उठायो वन्दवा, पाया केवल ज्ञानो रे॥

अपनी बहिनों के सन्देश को सुन कर बाहुबली चौंक पड़े। मन ही मन कहने लगे क्या मैं सचमुच हाथी पर बैठा हूँ? हाथी, घोड़े, राज्य, परिजन आदि सब को छोड़ कर ही मैंने दीक्षा ली थी। फिर हाथी की सवारी कैसी? हाँ अब समझ में आया। मैं अहंकार रूपी हाथी पर बैठा हूँ। मेरी बहिनें ठीक कह रही हैं। मैं कितने भ्रम में था। छोटे और बड़े की कल्पना तो सांसारिक जीवों की है। आत्मा अनादि और अनन्त है। फिर उसमें छोटा कौन और बड़ा कौन? आत्मजगत् में वही बड़ा है जिसने आत्मा का पूर्ण विकास कर लिया है। संसारावस्था में छोटे होने पर भी मेरे भाइयों ने आत्मा का पूर्ण विकास कर लिया है। मेरी आत्मा में अब भी अहङ्कार भरा हुआ है, बहुत से दोष हैं। इस लिए वास्तव में वे ही मुझ से बड़े हैं। मुझे उन्हें नमस्कार करना चाहिए।

यह सोच कर बाहुबली ने भगवान् ऋषभदेव के पास जाने के लिए एक पैर आगे रक्खा। इतने में उनके चार घाती कर्म नष्ट हो गए। उन्हें केवलज्ञान हो गया। देवों ने पुष्पवृष्टि की। चारों ओर जय जयकार होने लगा।

दोनों बहिनें अपने स्थान पर लौट गईं। पृथ्वी पर घूम घूम कर उन्होंने अनेक भव्य प्राणियों को प्रतिबोध दिया। अनेक भूले भटके जीवों को आत्मकल्याण का मार्ग बताया। कठोर तप और शुभ ध्यान द्वारा अपने कर्मों को नष्ट करने का भी प्रयत्न किया। इस प्रकार आत्मा तथा दूसरों के कल्याण की साधना करते करते उनके घाती कर्म नष्ट हो गए। केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर आयुष्य पूर्ण होने पर, दोनों ने मोक्ष रूपी परमपद को प्राप्त किया। इन दोनों महासतियों को सदा वन्दन हो।

चन्दनबाला (वसुमती)

विहार प्रान्त में जो स्थान आज कल चम्पारन के नाम से प्रसिद्ध है, प्राचीन समय में वहाँ चम्पापुरी नाम की विशाल नगरी थी। वह अङ्गदेश की राजधानी थी। नगरी व्यापार का केन्द्र, धन धान्य आदि से समृद्ध तथा सब प्रकार से रमणीय थी।

वहाँ दधिवाहन नाम का राजा राज्य करता था। वह न्याय, नीति तथा प्रजा पालन आदि गुणों का भण्डार था। प्रजा पर पुत्र के समान प्रेम रखता था और प्रजा भी उसे पिता मानती थी। ऐसे राजा को प्राप्त करके प्रजा अपने को धन्य समझती थी।

दधिवाहन राजा की धारिणी नाम की रानी थी। पतिसेवा, धर्म पर श्रद्धा, उदारता, हृदय की कोमलता आदि जितने गुण राजरानी में होने चाहिएं वे सब धारिणी में विद्यमान थे। राजा तथा रानी दोनों धर्मपरायण थे। दोनों में परस्पर अगाध प्रेम था। दोनों विलासिता से दूर थे। राज्य को भोग्य वस्तु न समझ

कर वे उसे कर्तव्य-भार मानते थे। परस्पर सहयोग से प्रजा का पालन करते हुए दोनों अपने जीवन को सुखपूर्वक बिता रहे थे।

कुछ दिनों बाद धारिणी ने एक महान् सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। उज्ज्वल रूप तथा शुभ लक्षणों वाली उस पुत्री के जन्म से माता पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़े समारोह के साथ उसका जन्मोत्सव मनाया। माता पिता ने कन्या का नाम वसुमती रक्खा।

उसे देख कर धारिणी सोचा करती थी कि वसुमती को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे यह अपने कल्याण के साथ मानव समाज का भी हित कर सके। बचपन से ही उसे नम्रता, सरलता आदि गुणों की शिक्षा मिलने लगी। उसमें धर्म तथा न्याय के दृढ़ संस्कार जमाए जाने लगे। जैसे जैसे बड़ी हुई उसे दूसरी बातें भी सिखाई जाने लगीं। संगीत, पढ़ना, लिखना, सीना, पिरोना, भोजन बनाना, घर संवारना आदि स्त्री की सभी कलाओं में वह प्रवीण हो गई। उसकी बोली, उसका स्वभाव और उसका रहन सहन सभी को प्रिय लगता था। उसे देख कर सभी प्रसन्न हो उठते थे। सखियाँ उसे देवी मानती थीं। धारिणी उसे देख कर फूली न समाती थी।

धीरे धीरे वसुमती ने किशोरावस्था में प्रवेश किया। उसके शरीर पर यौवन के चिह्न प्रकट होने लगे। गुण और सौन्दर्य एक दूसरे की होड़ करने लगे। सखियाँ वसुमती के विवाह की बातें करने लगीं किन्तु उसके हृदय में अब भी वही कुमार-सुलभ सरलता तथा पवित्रता थी। वासना उसे छूई तक न थी। उसके मुख पर वही बचपन का भोलापन था। चेहरे पर निर्दोष हँसी थी। अपने गुणों से दूसरों को मोहित कर लेने पर भी उसका मन अभिमान से सर्वथा शून्य था, जैसे अपने उन गुणों से वह स्वयं अपरिचित थी।

राजा दधिवाहन को वसुमती के लिए योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई किन्तु धारिणी वसुमती से जगत्कल्याण की आशा

रखती थी। विवाह बन्धन में पड़ जाने पर यह आशा पूरी होनी कठिन थी। इस लिए वह चाहती थी कि वसुमती आजन्म पूर्ण ब्रह्मचारिणी रह कर महिला समाज के सामने एक महान् आदर्श उपस्थित करे। इसी लिए वसुमती को शिक्षा भी इसी प्रकार की दी गई थी। उसके हृदय में भी यह भावना जम गई थी कि मैं गार्हस्थ्य के झंझटों में न पड़ कर संसार के सामने ब्रह्मचर्य, त्याग और सेवा का महान् आदर्श रक्खूं। धारिणी वसुमती के इन विचारों से परिचित थी इस लिए राजा द्वारा विवाह की बात छेड़ी जाने पर धारिणी ने कहा– वसुमती विवाह न करेगी।

एक दिन राजा और रानी अपने महल में बैठे वसुमती के विवाह की बात सोच रहे थे। उसी समय अपने शयनागार में बैठी हुई वसुमती के मस्तिष्क में और ही तरंगें उठ रही थी। वह विचार रही थी– लोग स्त्रियों को अबला क्यों कहते हैं? क्या उनमें वही अनन्त आत्मशक्ति नहीं है जो पुरुषों में है? स्त्रियों ने भी अपने अज्ञान से अपने को अबला समझ लिया है। वे अपने को पराधीन मानती हैं। स्त्रियों की इस अज्ञानता को मैं दूर करूँगी। उन्हें बताऊँगी कि स्त्रियों में भी वही अनन्त शक्ति है जो पुरुषों में है। वे भी आत्मबल द्वारा मोक्ष की आराधना कर सकती हैं। फिर वे अबला क्यों हैं। प्रभो! मुझे वह शक्ति दो जिससे मैं अपनी बहिनों का उद्धार कर सकूँ।

इस प्रकार विचार करते हुए वसुमती को नींद आ गई। रात के चौथे पहर में उसने एक स्वप्न देखा– चम्पापुरी घोर कष्ट में पड़ी हुई है और मेरे द्वारा उसका उद्धार हुआ है। स्वप्न देखते ही वह जग गई और उसके फल पर विचार करने लगी। बहुत सोचने पर भी उसकी समझ में कोई बात न आई। इसी विचार में वह शय्या से उठ कर पास वाली अशोकवाटिका में चली गई

और एक वृक्ष के नीचे बैठ कर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी।

प्रातःकाल होते ही वसुमती की सखियाँ उसे जगाने के लिए महल में आईं किन्तु वसुमती वहाँ न मिली। ढूंढती ढूंढती वे अशोकवाटिका में चली आईं। वहाँ उसे चिन्तित अवस्था में बैठी हुई देख कर आपस में कहने लगीं— वसुमती को अब अकेली रहना अच्छा नहीं लगता। वह किसी योग्य साथी की चिन्ता कर रही है। वे सब मिल कर वसुमती से विवाह सम्बन्धी तरह तरह के मजाक करने लगीं।

वसुमती को उनकी अज्ञानता पर दया आ गई। वह सोचने लगी— स्त्री समाज का हृदय कितना विकृत हो गया है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि विवाह के सिवाय भी चिन्ता का कोई कारण हो सकता है। उसने सखियों को फटकारते हुए कहा— जन्म से एक साथ रहने पर भी तुम मुझे न समझ सकीं। मुझे भी अपने समान तुच्छ विचारों वाली समझ लिया है। विवाह न करने का तो मैं निश्चय कर चुकी हूँ फिर उससे सम्बन्ध रखने वाली कोई चिन्ता मेरे मन में आ ही कैसे सकती है?

मेरे विचार में प्रत्येक स्त्री पुरुष पर तीन व्यक्तियों के ऋण हैं— माता, पिता और धर्माचार्य। सासू, श्वसुर, पति आदि का ऋण भी स्त्री पर होता है किन्तु उसे करना या न करना अपने हाथ की बात है। पहले तीन ऋण तो प्रत्येक प्राणी पर होते हैं। उन्हें चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। मेरी माता ने मुझे शिक्षा दी है कि धर्म और समाज की सेवा द्वारा इन ऋणों को अवश्य चुकाना। मनुष्य जन्म बार बार नहीं मिलता। विषयभोग में उसे गँवा देना मूर्खता है। मानव जीवन का उद्देश्य परमार्थ साधन ही है। जो कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकती उसी के लिए विवाह का विधान है। जो ब्रह्मचर्य का पालन

करने में समर्थ है उसे विवाह की कोई आवश्यकता नहीं है। माता पिता और धर्म की सेवा करके मैं ऊपर लिखे तीनों ऋणों से मुक्त होना चाहती हूँ।

वसुमती की ये बातें सखियों को विचित्र सी मालूम पड़ीं। उन्होंने सोचा ये कोरी उपदेश की बातें हैं। दिल की बातें कुछ और हैं। उनके फिर पूछने पर वसुमती ने स्वप्न का सारा हाल सुना दिया। सखियाँ स्वप्न का वृत्तान्त महारानी को सुनाने चली गईं। वसुमती फिर विचार में पड़ गई। मन में कहने लगी— इस स्वप्न ने मेरे द्वारा एक महान् कार्य के होने की सूचना दी है। मुझे अभी से उसके लिए तैयार रहना चाहिए। उसके लिए शक्ति का संचय करना चाहिए।

सखियों ने स्वप्न का हाल धारिणी को सुनाया। उसने कहा— अगर मेरी पुत्री ऐसे महान् कार्य को सम्पन्न कर सके तो मेरे लिए इससे बढ़ कर क्या सौभाग्य की बात होगी। वसुमती के इस स्वप्न के कारण उसके विवाह की बात अनिश्चित काल के लिए टाल दी गई। वसुमती जैसा चाहती थी वही हो गया।

चम्पापुरी के राज्य की सीमा पर कौशाम्बी नाम का दूसरा राज्य था। कौशाम्बी भी धन धान्य से समृद्ध तथा व्यापार के लिए प्रसिद्ध नगरी थी। वहाँ शतानीक नाम का राजा राज्य करता था। दधिवाहन की रानी पद्मावती और शतानीक की रानी मृगावती दोनों सगी बहनें थीं। इस लिए वे दोनों राजा आपस में साढू थे।

सम्बन्धी होने पर भी दोनों राजाओं के स्वभाव में महान् अन्तर था। दधिवाहन सन्तोषी, शान्तिप्रिय और धार्मिक था, उसमें राज्यलिप्सा न थी। दूसरे को कष्ट में डाल कर ऐश्वर्य बढ़ाना उसकी दृष्टि में घोर पाप था। ऐश्वर्य पाकर धनसत्ता द्वारा दूसरों पर आतङ्क जमाना उसे पसन्द न था। सभी को सुख पहुँचा कर

वह प्राणिमात्र से मित्रता चाहता था, उन पर आधिपत्य नहीं।

शतानीक के विचार इसके सर्वथा विपरीत थे। वह दिन रात राज्य को बढाने की चिन्ता में लगा रहता था। न्याय और धर्म का गला घोट कर भी वह राज्य और वैभव बढ़ाना चाहता था। जनता पर आतङ्क जमा कर शासन करना अपना धर्म समझता था। अपनी राज्यलिप्सा को पूर्ण करने के लिए निर्दोष प्राणियों को कुचलना, उनके खून से होली खेलना खेल समझता था।

शतानीक की दृष्टि में समृद्ध चम्पापुरी सदा खटका करती थी। न्याय पूर्वक राज्य करने से फैलने वाली दधिवाहन की कीर्ति भी उसके लिए असह्य हो उठी थी। ईर्ष्यालु जब गुणों द्वारा अपने प्रतिस्पर्द्धी को नहीं जीत सकता तो वह उसे दूसरे उपायों से नुकसान पहुँचाने की चेष्टा करता है किन्तु उससे उसकी अपकीर्ति ही बढ़ती है, वह अपने स्वार्थ को सिद्ध नहीं कर सकता।

दधिवाहन या चम्पापुरी पर किसी प्रकार का दोष मढ़ कर उस पर चढ़ाई कर देने की चालें शतानीक अपने मन्त्रिमण्डल के साथ सोचा करता था। अपनी बुरी कामना को पूर्ण करने के लिए दूसरे पर किसी प्रकार का अपवाद लगा देना, उसे अपराधी बता कर इच्छित वस्तु पर अधिकार जमा लेना, उसे नीचा दिखाने के लिए कोई झूठा दोष मढ़ देना तथा मनमानी करते हुए भी स्वयं निर्दोष बने रहना शतानीक की दृष्टि में राजनीति थी।

चम्पापुरी का राज्य हड़पने के लिए शतानीक कोई बहाना ढूँढ रहा था, किन्तु दधिवाहन के हृदय में युद्ध करने या किसी का राज्य छीनने की बिल्कुल इच्छा न थी। आस पास के सभी राजाओं से उसकी मित्रतापूर्ण सन्धि थी। इस लिए न उसे किसी शत्रु का डर था और न उससे किसी दूसरे को भय था। इसी कारण से उसने राज्य के आन्तरिक प्रबन्ध के लिए थोड़ी सी सेना रख

छोड़ी थी। युद्ध या किसी के आक्रमण को रोकने के लिए सैनिक शक्ति को बढ़ाना उसकी दृष्टि में व्यर्थ था, इसी से शतानीक का उत्साह बहुत बढ गया था। दधिवाहन की मुट्ठी भर सेना को हरा कर चम्पापुरी पर अधिकार जमा लेने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई न जान पड़ती थी।

शतानीक ने किसी मामूली सी बात को लेकर चम्पापुरी पर चढ़ाई कर दी। दधिवाहन को इस बात का स्वप्न में भी खयाल न था कि कोई राजा उस पर भी चढ़ाई कर सकता है। युद्ध की घोषणा करती हुई शतानीक की सेना चम्पा के राज्य में घुस गई और प्रजा को सताने लगी। सीमा की रक्षा करने वाले दधिवाहन के थोड़े से सिपाही उसका सामना न कर सके। वे दौड़े हुए दधिवाहन के पास आए और चढ़ाई का समाचार सुनाया। शतानीक की सेना द्वारा सताई गई प्रजा ने भी राजा दधिवाहन के पास पुकार की।

दधिवाहन इस अप्रत्याशित समाचार को सुन कर विचार में पड़ गया। उसने अपने मन्त्रियों की सभा बुलाई और कहा— मित्रता-पूर्ण सन्धि होने पर भी शतानीक ने चम्पा पर चढ़ाई कर दी है। हमारे खयाल में अभी कोई भी ऐसा कारण उपस्थित नहीं हुआ जिससे शतानीक के आक्रमण को उचित कहा जा सके। अब यह विचार करना है कि शतानीक ने चढ़ाई क्यों की और इस समय हमें क्या करना चाहिए?

प्रधान मन्त्री— इस समय ऐसा कोई भी कारण उपस्थित नहीं हुआ जिससे शतानीक को चढ़ाई करनी पड़े। शतानीक चम्पा-पुरी को हड़पने की दुर्भावना से प्रेरित होकर आया है। उसे किसी दूसरे कारण की आवश्यकता नहीं है। ऐसा व्यक्ति साधारण सी बात को युद्ध का कारण बना सकता है। चम्पापुरी पर चढ़ाई करने के लिए शतानीक ऐसी चालें बहुत दिनों से चल रहा था।

इसके लिए मैंने आप से पहले भी निवेदन किया था। हम लोगों ने सदा शान्ति के लिए प्रयत्न किया किन्तु वह हमारी इस इच्छा को कायरता समझता रहा। अब एक ही उपाय है कि शत्रु का सामना करके उसे बता दिया जाय कि चम्पा पर चढ़ाई कोई हँसी खेल नहीं है। जब तक शत्रु को पराजित न किया जाएगा वह मानने का नहीं। शान्ति की बातों से उसका उत्साह दुगुना बढ़ता है। दूसरे मन्त्रियों ने भी युद्ध करने की ही सलाह दी।

मन्त्रियों की बात सुन कर राजा कहने लगा– वर्तमान राजनीति के अनुसार तो हमें युद्ध ही करना चाहिए, किन्तु इसके भयङ्कर परिणाम पर भी विचार करना आवश्यक है। शतानीक ने राज्य के लोभ में पड़ कर आक्रमण किया है। लोभी न्याय और अन्याय को भूल जाता है। अगर हम उसका सामना करें तो व्यर्थ ही लाखों मनुष्य मारे जाएंगे। अगर चम्पा का राज्य छोड़ देने पर यह नरहत्या बच जाय तो क्यों इस भयङ्कर पाप को किया जाय?

मन्त्री– महाराज! शत्रु द्वारा आक्रमण हो जाने पर धर्म की बातें करना कायरता है। ऐसे मौके पर क्षत्रिय का यह कर्तव्य है कि शत्रु का सामना करे।

राजा– क्षत्रिय का धर्म युद्ध करना नहीं है। उसका धर्म न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करना है। अन्याय और अधर्म को हटाने के लिए जो अपने प्राणों को भी त्याग सकता है वही असली क्षत्रिय है। क्षात्रत्व हिंसा में नहीं है किन्तु अहिंसा में है। यदि शतानीक को न्याय और नीति के लिए समझाया जाय तो सम्भव है, वह मान जाय। इसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए मैं स्वयं शतानीक के पास जाऊँगा।

मन्त्रियों के विरोध करने पर भी दधिवाहन ने शतानीक के पास अकेले जाने का निश्चय कर लिया।

शतानीक में चम्पा का राज्य लेने की भावना दृढ़ हो चुकी थी और दधिवाहन में यथासम्भव हिंसा न होने देने की।

राजकर्मचारी तथा प्रजाजन द्वारा की गई प्रार्थना पर बिना ध्यान दिए दधिवाहन राजा घोड़े पर सवार होकर शतानीक के पास जा पहुँचे। उन्हें अकेला आया देख कर शतानीक बहुत प्रसन्न हुआ। उसका अभिमान और बढ़ गया। सोचने लगा— दधिवाहन डर कर मेरी शरण में चला आया है।

शतानीक के पास पहुँच कर दधिवाहन ने कहा— महाराज! हम दोनों में मित्रतापूर्ण सन्धि है। आप मेरे सम्बन्धी भी हैं। आज तक हम दोनों का पारस्परिक व्यवहार प्रेमपूर्ण रहा है। मेरे खयाल में हमारी तरफ से ऐसी कोई बात नहीं हुई जिससे आपको किसी प्रकार की हानि हुई हो फिर भी आपने अचानक चम्पापुरी पर आक्रमण कर दिया। मेरा खयाल है, आप भी प्रजा में शान्ति रखना पसन्द करते हैं। नरहत्या आपको भी पसन्द नहीं है। आप इस बात को समझते हैं कि क्षत्रिय का धर्म किसी को कष्ट देना नहीं किन्तु कष्ट देने वाले चोर और डाकुओं से प्रजा की रक्षा करना है। यदि राजा स्वयं कष्ट देने लगे तो उसे राजा नहीं लुटेरा कहा जाएगा।

क्या आप कोई ऐसा कारण बता सकते हैं जिससे आप के इस आक्रमण को न्यायपूर्ण कहा जा सके?

शतानीक— जब शत्रु ने आक्रमण कर दिया हो उस समय न्याय-अन्याय की बात करना कायरता है। अपनी कायरता को धर्म की आड़ में छिपाना वीर पुरुषों का काम नहीं है। इस समय न्याय और धर्म का बहाना निरा ढोंग है। युद्ध करना, नए नए देश जीतना, अपना राज्य बढ़ाना, क्षत्रियों के लिए यही न्याय है।

दधिवाहन— युद्ध से होने वाले भयङ्कर परिणाम पर आप

विचार कीजिए। लाखों निर्दोष मनुष्य आपस में कट कर समाप्त हो जाते हैं। हजारों बहनें विधवा हो जाती हैं। देश नवयुवकों से खाली हो जाता है। चारों ओर बालक, वृद्ध और अबलाओं की करुण पुकार रह जाती है। एक व्यक्ति की लिप्सा का परिणाम यह महान् संहार कभी न्याय नहीं कहा जा सकता। हिंसा राक्षसी वृत्ति है। उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। आपका जरासा सन्तोष इस भीषण हत्याकाण्ड को बचा सकता है।

शतानीक– मुझे सन्तोष की आवश्यकता नहीं है। राजनीति राजा को सन्तोषी होने का निषेध करती है। पृथ्वी पर वे ही शासन करते हैं जो वीर हैं, शक्तिशाली हैं। क्षत्रियों के लिए तलवार ही न्याय है और अपनी राज्यलिप्सा रूपी अग्नि को सदा प्रज्वलित रखना ही उनका धर्म है।

दधिवाहन को निश्चय हो गया कि शतानीक लोभ में पड़ कर अपनी बुद्धि को खो बैठा है। इस प्रकार की बातें करके वह मुझे युद्ध के लिए उत्तेजित करना चाहता है लेकिन इसके कहने पर क्रोध में आकर विवेक खो बैठना बुद्धिमत्ता नहीं है। गम्भीरतापूर्वक विचार करके मुझे किसी प्रकार युद्ध को रोकना चाहिए।

दधिवाहन को विचार में पड़ा देख कर शतानीक ने कहा– आप सोच क्या कर रहे हैं? यदि शक्ति हो तो हमारा सामना कीजिए। यदि युद्ध से डर लगता है तो आत्मसमर्पण करके हमारी अधीनता स्वीकार कर लीजिए। यदि दोनों बातें पसन्द नहीं हैं तो यहाँ क्यों आए? सीधा जंगल में भाग जाना चाहिए था। इस प्रकार न्याय की दुहाई देकर अपनी कायरता को छिपाने से क्या लाभ?

दधिवाहन ने निश्चय कर लिया कि जब तक शतानीक का लोभ शान्त न किया जाय, युद्ध नहीं टल सकता। इसके लिए यही उचित है कि मैं राज्य छोड़ कर वन में चला जाऊँ। यदि

इसकी अधीनता स्वीकार की गई तो इसका परिणाम और भी भयङ्कर होगा। इसके आदेशानुसार मुझे प्रजा पर अन्याय करना पड़ेगा और हर तरह से इसकी इच्छाओं को पूरा करना पड़ेगा। जिस प्रजा की रक्षा के लिए मैं इतना उत्सुक हूँ फिर उसी पर अत्याचार करना पड़ेगा।

वन जाने का निश्चय करके घोड़े पर सवार होते हुए दधिवाहन ने कहा– यदि आपकी इच्छा चम्पा पर राज्य करने की है तो आप सहर्ष कीजिए। अब तक चम्पापुरी की प्रजा का पालन मैंने किया अब आप कीजिए। मैं सोचा करता था–वृद्ध हुआ हूँ, कोई पुत्र नहीं है, राज्य का भार किसे सौंपूंगा। आपने मुझे चिन्ता-मुक्त कर दिया। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। यह कह कर दधिवाहन घोड़े पर बैठ कर वन को चला गया।

अपने राज्य की सीमा पर पहुँच कर उसने अपने मन्त्रियों के पास खबर भेज दी– शतानीक की सेना बहुत बड़ी है। उससे लड़ कर अपनी सेना तथा प्रजा का व्यर्थ संहार मत कराना। अब तक चम्पा की रक्षा मैंने की थी। अब शतानीक अपने ऊपर रक्षा का भार लेना चाहता है इस लिए मेरी जगह उसी को राजा मानना।

प्रधान मन्त्री को राजा की बात अच्छी न लगी। उसने सब मन्त्रियों की एक सभा करके निश्चय किया कि चम्पा नगरी का राज्य इस प्रकार सरलता पूर्वक शतानीक के हाथ में सौंपना ठीक नहीं है। युद्ध न करने पर सेना का क्या उपयोग होगा? उसने युद्ध की घोषणा कर दी।

दधिवाहन के चले जाने पर शतानीक के हर्ष का पारावार न रहा। विना युद्ध के प्राप्त हुई विजय पर वह फूल उठा। उसने चम्पानगरी में तीन दिन तक लूट मचाने के लिए सेना को छुट्टी दे दी। शतानीक की सेना लूट की खुशी में चली आ रही थी।

चम्पा नगरी के पास पहुँचने पर उसे मालूम पड़ा कि दधिवाहन की सेना सामना करने के लिए तैयार खड़ी है। शतानीक ने भी अपनी सेना को युद्ध की आज्ञा दे दी। दोनों सेनाओं में घमासान संग्राम छिड़ गया। दधिवाहन की सेना बड़ी वीरता से लड़ी किन्तु शतानीक की सेना के सामने मुट्ठी भर बिना नायक की फौज कितनी देर ठहर सकती थी। शतानीक की सेना से परास्त हो कर उसे रणभूमि छोड़ कर भागना पड़ा।

चम्पानगरी के दरवाजे तोड़ दिए गए। शतानीक की सेना लूट मचाने लगी। सारे नगर में हाहाकार मच गया। सैनिकों का विरोध करना साक्षात् मृत्यु थी। पाशविकता का नग्न ताण्डव होने लगा किन्तु उसे देख कर शतानीक प्रसन्न हो रहा था। राक्षसी वृत्ति अपना भीषण रूप धारण करके उसके हृदय में पैठ चुकी थी।

चम्पापुरी में एक ओर तो यह नृशंस काण्ड हो रहा था दूसरी ओर महल में बैठी हुई महारानी धारिणी वसुमती को उपदेश दे रही थी। दधिवाहन का राज्य छोड़ कर चले जाना, अपनी सेना का हार जाना, शतानीक के सैनिकों का नगरी में प्रवेश तथा लूट मार आदि सभी घटनाएं धारिणी को मालूम हो चुकी थीं किन्तु उसने धैर्य नहीं छोड़ा। सेवकों ने आकर खबर दी कि राजमहल भी सिपाहियों द्वारा लूटा जाने वाला है, किन्तु धारिणी ने फिर भी धैर्य नहीं छोड़ा। वह वसुमती को कहने लगी—बेटी! तेरे स्वप्न का एक भाग तो सत्य हो रहा है। चम्पापुरी दुःखसागर में डूबी हुई है। तेरे पिता वन में चले गए हैं। यह समय हमारी परीक्षा का है। इस समय घबराना ठीक नहीं है। धर्म यह सिखाता है कि भयङ्कर विपत्ति को भी अपने कर्मों का फल समझ कर धैर्य रखना चाहिए। ऐसे समय में धैर्य त्याग देने वाला कभी जीवन में सफल नहीं हो सकता। अब स्वप्न का दूसरा भाग सत्य करने का उत्तर-

दायित्व तुम पर आ पड़ा है। तेरे पिता किसी ऊँची भावना को लेकर ही वन में गए होंगे। अपने धर्म की रक्षा करना हमारा सब से पहला कर्तव्य है। नष्ट हुई चम्पापुरी फिर बस सकती है, गया हुआ जीवन फिर मिल सकता है किन्तु गया हुआ धर्म फिर मिलना कठिन है। धर्म में दृढ़ रहने पर ही तुम अपने स्वप्न के बचे हुए भाग को सत्य कर सकोगी।

धारिणी वसुमती को यह उपदेश दे रही थी कि इतने में शतानीक की सेना का एक रथी (रथ से लड़ने वाला योद्धा) वहाँ आ पहुँचा। वह राजमहल को लूटने के लिए वहाँ आया था। चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों को देख कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। पहरेदार तथा नौकर चाकर डर के मारे पहले ही भाग चुके थे, इसलिए रानी के खास महल तक पहुँचने में उसे कोई कठिनाई न हुई।

धारिणी को देख कर रथी चकित रह गया। उसके सौन्दर्य को देख कर वह रत्नों को भूल गया। उसे मालूम पड़ने लगा, जैसे इस जीवित स्त्रीरत्न के सामने निर्जीव रत्न कङ्कर पत्थर ही हैं। उसे बल पूर्वक प्राप्त करने का निश्चय करके रथी तलवार निकाल कर धारिणी के पास जाकर कहने लगा— उठो और मेरे साथ चलो। अब यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं है। चम्पापुरी पर शतानीक का राज्य है और यहाँ की सारी सम्पत्ति सैनिकों की है। मेरे साथ चलो, नहीं तो यह तलवार तुम्हारा भी खून पीने में न हिचकेगी।

धारिणी ने सोचा—यह सैनिक विचारहीन हो रहा है। इस समय इसे समझाना व्यर्थ है। सम्भव है, युद्ध का नशा उतरने पर समझाने से यह मान जाय। तब तक वसुमती को भी मैं अपनी बात पूरी कह सकूँगी। यह सोच कर बिना किसी भय या दीनता के अपनी पुत्री को लेकर वह रथी के साथ हो गई और रथी के कहे अनुसार निःसङ्कोच रथ में जा कर बैठ गई।

रथी अपने मन में भावी सुखों की कल्पना करता हुआ रथ के चारों ओर परदा डाल कर उसे ढाँकने लगा। नगरी की ओर जाना उचित न समझ उसने सीधे वन की ओर प्रस्थान किया। रथी अपनी हवाई उमङ्गों तथा भविष्य की सुखद कल्पनाओं में डूबा हुआ रथ को हाँके चला जा रहा था और अन्दर बैठी हुई धारिणी वसुमती को उपदेश दे रही थी— बेटी! यह समय घबराने का नहीं है। तुम्हारे पिता तो हमें छोड़ कर चले ही गए। यह भी पता नहीं है कि मुझे भी तेरा साथ कब छोड़ देना पड़े, इसलिए तुम्हें वीरता पूर्वक प्रत्येक विपत्ति का सामना करने के लिए अपने ही पैरों पर खड़ी होना चाहिए। वीर अपनी रक्षा स्वयं करता है किसी दूसरे की सहायता नहीं चाहता। अपने स्वप्न के दूसरे भाग को भी तुम्हें अकेली ही पूरा करना पड़ेगा। चम्पापुरी में लाखों मनुष्यों का रक्त बहा है। निर्दोष प्रजा को लूटा गया है। चम्पापुरी पर लगे हुए इस कलङ्क को मिटाना ही उसका उद्धार है। उसका यह कलङ्क फिर युद्ध करने से न मिटेगा। युद्ध से तो वह दुगुना हो जायगा। इस लिए तुम्हें अहिंसात्मक संग्राम की तैयारी करनी चाहिए। इस संग्राम में विजय ही विजय है, कोई पराजित नहीं होता। इसमें दोनों शत्रु मिल कर एक हो जाते हैं, फिर पराजय का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता।

हिंसात्मक युद्ध की अपेक्षा अहिंसात्मक युद्ध में अधिक वीरता चाहिए। इसके लिए लड़ने वाले में नीचे लिखी बातें बहुत अधिक मात्रा में चाहिएं। इस युद्ध में सब से पहले अपार धैर्य की आवश्यकता है। भयङ्कर से भयङ्कर कष्ट आने पर भी धैर्य छोड़ देने वाला अहिंसात्मक युद्ध नहीं कर सकता। सहिष्णुता के साथ भावना का पवित्र रहना, किसी से वैर न रखना, भय रहित होना तथा सतत परिश्रम करते जाना भी नितान्त आवश्यक है। अहिंसात्मक युद्ध

में दूसरे का रक्त नहीं बहाया जाता किन्तु अपने रक्त को पानी समझ कर उसके द्वारा द्वेष रूपी कलङ्क धोया जाता है। इसलिए धर्म और न्याय की रक्षा के लिए तथा चम्पापुरी का कलङ्क मिटाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण दे देने के लिए भी तुम्हें तैयार रहना चाहिए।

रथ को लेकर वह योद्धा घोर वन में पहुँच गया। जहाँ मनुष्यों का आना जाना नहीं था ऐसे दुर्गम तथा एकान्त प्रदेश में पहुँच कर रथ को रोक दिया। रथ के परदे उठाए और धारिणी को नीचे उतरने के लिए कहा। धारिणी और वसुमती दोनों उतर कर एक वृक्ष की छाया में बैठ गईं।

रथी ने अपनी बुरी अभिलाषा धारिणी के सामने रक्खी। उसे विविध प्रलोभन दिए, जन्म भर उसका दास बने रहने की प्रतिज्ञा की, किन्तु सती शिरोमणि धारिणी अपने सतीत्व से डिगने वाली न थी।

उसने रथी से कहा–भाई! अपने वेश और आकृति से तुम वीर मालूम पड़ते हो किन्तु तुम्हारे मुँह से निकलने वाली बातें इसके विपरीत हैं। विवाह के समय तुमने अपनी स्त्री से प्रतिज्ञा की थी कि उसके सिवाय संसार की सभी स्त्रियों को मां या बहिन समझोगे। उस प्रतिज्ञा को तोड़ कर आज वैसी ही प्रतिज्ञा तुम मेरे सामने कर रहे हो। जब तुम एक बार प्रतिज्ञा तोड़ चुके हो तो तुम्हारी दूसरी प्रतिज्ञाओं पर कौन विश्वास कर सकता है? क्या वीर पुरुष को इस प्रकार प्रतिज्ञा तोड़ना शोभा देता है?

विवाह में की गई प्रतिज्ञा के अनुसार मैं तुम्हारी बहिन हूँ। बहिन के साथ ऐसी बातें करते हुए क्या तुम अच्छे लगते हो?

मैंने अपने विवाह के समय राजा दधिवाहन के सिवाय सभी पुरुषों को पिता या भाई मानने की प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञा के अनुसार तुम मेरे भाई हो। तुम अपनी प्रतिज्ञा तोड़ डालो तो भी

मैं तो तुम्हें अपना भाई ही समझूंगी। मैं क्षत्राणी हूँ, अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकती।

यह कह कर धारिणी ने रथी के सब प्रलोभन ठुकरा दिए। रथी का मस्तक एक बार तो लज्जा से झुक गया किन्तु उसे काम ने अन्धा बना रक्खा था। धर्म अधर्म, पाप पुण्य या न्याय अन्याय की बातों का उस पर कोई असर न पड़ा।

रथी ने दधिवाहन को कायर, डरपोक और भगेडू बता कर रानी पर अपनी वीरता का सिक्का जमाने की चेष्टा की किन्तु वह भी बेकार गई। इन सब उपायों के व्यर्थ हो जाने पर उसने बलप्रयोग करने का निश्चय किया। धारिणी रथी के भावों को समझ गई। रथी बलपूर्वक अपनी वासना पूर्ण करने के लिए उठा ही था कि धारिणी ने अपनी जीभ पकड़ कर बाहर खींच ली। उसके मुँह से खून की धारा बहने लगी। प्राणपखेरू उड़ गए। निर्जीव शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने बलिदान द्वारा धारिणी ने वसुमती तथा समस्त महिलाजगत् के सामने तो महान् आदर्श रक्खा ही, साथ में सारथी के जीवन को भी एकदम पलट दिया। कामान्ध होने के कारण जिस पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा उसे आत्मोत्सर्ग द्वारा सत्य का मार्ग सुझा दिया। क्रूरता और कामलिप्सा को छोड़ कर वह दयालु और सदाचारी बन गया। महान् आत्माएं जिस कार्य को अपने जीवित काल में पूरा नहीं कर सकतीं उसे आत्मबलिदान द्वारा पूरा करती हैं।

धारिणी के प्राणत्याग को देख कर रथी भौंचका सा रह गया। वह कर्तव्यमूढ़ हो गया। उसे यह आशा न थी कि धारिणी इस तरह प्राण त्याग देगी। वह अपने को एक महासती का हत्यारा समझने लगा। पश्चात्ताप के कारण उसका हृदय भर आया। अपने को महापापी समझ कर शोक करता हुआ वह वहीं बैठ गया।

वसुमती इस हृदयद्रावक दृश्य को धीरतापूर्वक देख रही थी। मन में सोच रही थी कि माता ने मुझे जो शिक्षाएं दी थीं, उन्हें कार्य रूप में परिणत करके साक्षात् उदाहरण रख दिया है। ऐसी माता को धन्य है। ऐसी मां को प्राप्त करके मैं अपने को भी धन्य मानती हूँ। मां ने मुझे रास्ता बता दिया, अब मेरे लिए कोई कठिनाई नहीं है। सम्भव है, यह योद्धा मां की तरह मुझे भी अपनी वासनापूर्ति का विषय बनाना चाहे। यह भी शक्य है कि मां के उदाहरण को देख कर यह मेरे लिए कोई और षडयन्त्र रचे। इस लिए पहले से ही अपनी माता के मार्ग को अपना लूँ। इसे कुछ करने का अवसर ही क्यों दूँ।

मन में यह विचार कर वसुमती भी प्राणत्याग करने को उद्यत हुई। रथी उसके इरादे से डर गया। दौड़ा हुआ वसुमती के पास आया और कहने लगा- बेटी! मुझे क्षमा करो। मैंने जो पाप किया है वह भी इतना भयङ्कर है कि जन्म जन्मान्तरों में भी छुटकारा होना मुश्किल है। अपने प्राण देकर मेरे उस पाप को अधिक मत बढ़ाओ। तेरी माता महासती थी, उसके बलिदान ने मेरी आँखें खोल दी हैं। मुझ पर विश्वास करो। मैं आज से तुझे अपनी पुत्री मानूँगा। मुझे क्षमा करो। यह कह कर रथी वसुमती के पैरों पर गिर पड़ा और अपने पाप के लिए बार बार पश्चात्ताप करने लगा।

वसुमती को निश्चय हो गया कि रथी के विचार अब पहले सरीखे नहीं रहे। उसने रथी को सान्त्वना दी। इसके बाद दोनों ने मिल कर धारिणी का दाहसंस्कार किया।

वसुमती को ले कर रथी अपने घर आया। रथी की स्त्री को माता समझ कर वसुमती ने उसे प्रणाम किया किन्तु रथी की स्त्री वसुमती को देखते ही विचार में पड़ गई। वह सोचने लगी- मेरे पति इस सुन्दर कन्या को यहाँ क्यों लाए हैं? मालूम पड़ता है वे

इसके रूप पर मोहित हो गए हैं। उसे अपने पति पर सन्देह हो गया। किन्तु किसी प्रमाण के बिना कुछ कहने का साहस न कर सकी।

वसुमती के आते ही रथी के घर का रंग ढंग बिल्कुल बदल गया। सब चीजें साफ़ सुथरी और व्यवस्थित रहने लगीं। नौकर चाकर तथा परिवार के सभी लोग प्रसन्न रहने लगे। वसुमती के गुणों से आकृष्ट हो कर सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। रथी उसके गुणों को बखानते न थकता था। उसकी स्त्री को अब कुछ भी काम न करना पड़ता था फिर भी उसकी आँखों में वसुमती सदा खटका करती थी। वह सोच रही थी, मेरे पति दिन प्रति दिन वसुमती की ओर झुक रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि यह मेरा स्थान छीन ले। इस लिए जितना शीघ्र हो सके, इसे घर से निकाल देना चाहिए। मन में यह निश्चय करके वह मौका ढूँढने लगी।

वसुमती घर के काम में इतनी व्यस्त रहती थी कि अपने खान पान का भी ध्यान न था। किसी काम में किसी प्रकार की गल्ती न होने देती थी। इतने पर भी रथी की स्त्री उसके प्रत्येक काम में गल्ती निकालने की चेष्टा करती। उसके किए हुए काम को स्वयं बिगाड़ कर उसी पर दोष मढ़ देती। इतने पर भी वसुमती क्षुब्ध न होती। वह उत्तर देती—माता जी! भूल से ऐसा हो गया। भविष्य में सावधान रहूँगी। रथी की स्त्री को विश्वास था कि इस प्रकार प्रत्येक कार्य में गल्ती निकालने पर वसुमती या तो स्वयं तंग हो कर चली जाएगी या किसी दिन मेरा विरोध करेगी और मैं स्वयं झगड़ा खड़ा करके इसे घर से निकलवा दूँगी किन्तु उसका यह उपाय व्यर्थ गया। वसुमती ने क्रोध पर विजय प्राप्त कर रक्खी थी, इस लिए सारथी की स्त्री के कड़वे वचन और झूठे आरोप उसे विचलित न कर सके।

वसुमती की कार्यव्यस्तता देख कर एक दिन सारथी ने उसे

कहा— बेटी ! तुम राज महल में पली हो। तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं है कि घर के कामों में इस तरह पिसा करो। तुम्हें अपने स्वास्थ्य और खान पान का भी ध्यान रखना चाहिए।

रथी की इस बात को उसकी स्त्री ने सुन लिया। उसे विश्वास हो गया कि वास्तव में मेरे पति इस पर आसक्त हो गए हैं। क्रोध से आँखें लाल करके वह वसुमती के पास आई और कहने लगी— क्यों ? मुझे ठगने चली है। ऊपर से तो मुझे मां कहती है और दिल में सौत बनने की इच्छा है। अच्छा हुआ मैं समय पर चेत गई। अब तुझे घर से निकलवा कर ही अन्न जल ग्रहण करूँगी। वसुमती के विरुद्ध वह जोर जोर से बकने लगी। घर के लोग उसके इस रूप को देख कर चकित रह गए। रथी को मालूम पड़ा तो वह भी दौड़ा हुआ आया और अपनी स्त्री को समझाने लगा। उसके समझाने पर वह अधिक बिगड़ गई और कहने लगी— अब तो सारा दोष मेरा ही है, क्योंकि मैं अच्छी नहीं लगती। मैं अच्छी लगती तो इसे क्यों लाते ? अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि या तो इसे घर से निकाल दो नहीं तो खाना पीना छोड़ कर अपने प्राण दे दूँगी। केवल निकाल देने से ही मुझे सन्तोष न होगा। लड़ाई से लौटे हुए सभी योद्धा चम्पापुरी को लूट कर बहुत धन लाए हैं। आप कुछ भी नहीं लाए। इस लिए इसे बाजार में बेच कर मुझे बीस लाख मोहरें लाकर दो। तभी अन्न जल ग्रहण करूँगी।

रथी ने अपनी स्त्री को बहुत समझाया किन्तु वह न मानी। यद्यपि धारिणी और वसुमती के आदर्श से रथी का स्वभाव बहुत कोमल हो गया था फिर भी उसे क्रोध आ गया। उसने अपनी स्त्री को कहा— ऐसी सदाचारिणी और सेवापरायण पुत्री को मैं अपने घर से नहीं निकाल सकता। तुम्हीं मेरे घर से निकल जाओ। दोनों में तकरार बढ़ने लगी।

वसुमती ने सोचा—मेरे कारण ही यह विरोध खड़ा हुआ है। इस लिए मुझे ही इसे निपटाना चाहिए। यह सोच कर वह रथी की स्त्री से कहने लगी— माताजी! आपको घबराने की आवश्यकता नहीं है। आप की इच्छा शीघ्र पूरी हो जायगी।

इसके बाद उसने रथी से कहा— पिताजी! इसमें नाराज होने की कोई बात नहीं है, अगर माताजी बीस लाख मोहरें लेकर मुझे छुटकारा दे रही हैं तो यह मेरे लिए हर्ष की बात है। इनका तो मुझ पर महान् उपकार है। इनका सन्देह दूर करना भी हम दोनों के लिए जरूरी है इस लिए आप मेरे साथ बाजार में चलिए और मुझे बेच कर माताजी का सन्देह दूर कीजिए। अगर आपको मेरे सतीत्व पर विश्वास है तो कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

रथी वसुमती को छोड़ना नहीं चाहता था किन्तु वसुमती ने अपने व्यवहार और उपदेश द्वारा उसे इतना प्रभावित कर रक्खा था कि वह उसे अपनी आराध्य देवी मानता था। बिना कुछ कहे उसकी बात को मान लेता था। वह बोला— बेटी! मेरा दिल तो नहीं मानता कि तुम सरीखी मङ्गलमयी साध्वी सती कन्या को अलग करूँ किन्तु तुम्हारे सामने कुछ भी कहने का साहस नहीं होता, इस लिए इच्छा न होने पर भी मान लेता हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है, तुम जो कुछ कहोगी उससे सभी का कल्याण होगा।

रथी और वसुमती बाजार के लिए तैयार हो गए। वसुमती ने रथी की स्त्री को प्रणाम किया और कहा मेरे कारण आपको बहुत कष्ट हुआ है इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। उसने परिवार के सभी लोगों से नम्रता पूर्वक विदा ली, दासी के कपड़े पहने और रथी के साथ बाजार का रास्ता लिया।

बाजार के चौराहे में खड़ी होकर वसुमती स्वयं चिल्लाने लगी—

भाइयो! मैं दासी हूँ, बिकने के लिए आई हूँ। दूसरी ओर रथी एक कोने पर खड़ा आँसू बहा रहा था। वसुमती से अलग होने के लिए अपने भाग्य को कोस रहा था।

वसुमती के चेहरे को देख कर सभी लोग कहते—यह किसी बड़े घर की लड़की मालूम पड़ती है। कौतूहल वश उसके पास जाकर पूछते— देवि! तुम कौन हो? यहाँ क्यों खड़ी हो!

वसुमती उत्तर देती—मैं दासी हूँ। यहाँ बिकने के लिए आई हूँ। मेरी कीमत बीस लाख मोहरें हैं। मेरे पिता को कीमत देकर जो चाहे मुझे खरीद सकता है। मैं घर का सारा काम करूँगी। घर को सुधार दूँगी। किसी प्रकार की त्रुटि न रहने दूँगी। उसने अपनी वास्तविकता को बताना ठीक न समझा।

यद्यपि वसुमती की सौम्य आकृति को देख कर सभी उसे अपने घर ले जाना चाहते थे किन्तु एक दासी के लिए इतनी बड़ी रकम देना किसी ने ठीक न समझा।

उसी समय एक वेश्या पालकी में बैठी हुई वहाँ आई। वह नगर की प्रसिद्ध वेश्या थी। नृत्य, गान और दूसरी कलाओं में उसके समान कोई न था। नगर में वह 'नगरनायिका' के रूप में प्रसिद्ध थी। अपने पाप के पेशे से अपार धन बटोर चुकी थी।

वसुमती को देख कर उसे अपार हर्ष हुआ। साथ में आश्चर्य भी हुआ कि ऐसी सुन्दरी बाजार में बिक रही है। वेश्या ने सोचा—ऐसी सुन्दरी को पाकर मेरा धन्धा चमक उठेगा। थोड़े ही दिनों में सारी रकम वसूल हो जायगी। इसलिए मुंह मांगे दाम देने को तैयार हो गई।

उसने वसुमती से कहा— तुम मेरे साथ चलो। साथ में अपने पिता को भी ले लो। मैं उन्हें बीस लाख मोहरें दे दूँगी।

वेश्या खूब सजी हुई थी। रेशमी वस्त्र पहिन रक्खे थे। आभू-

षणों से लदी थी। उसकी बोली और चाल ढाल में बनावट थी। वसुमती उसकी भावभंगी से समझ गई कि यह कोई भद्र औरत नहीं है। उसने वेश्या से पूछा– माताजी! आप मुझे किस कार्य के लिए खरीदना चाहती हैं? आपके घर का आचार क्या है?

वेश्या ने उत्तर दिया– तू तो भोली है। नित्य नए शृङ्गार करना, नए नए वस्त्र तथा आभूषणों से अपने शरीर को सुसज्जित करना तथा नित्य नए सुख भोगना हमारे यहाँ का आचार है। मेरे घर पर तुझे दासीपना न करना होगा किन्तु बड़े बड़े पुरुषों को अपना दास बनाए रखना होगा। मैं अपनी नृत्य और गान कला तुझे सिखा दूँगी। फिर ऐसा कौन है जो तेरे आगे न झुक जाय।

वेश्या की बात समाप्त होते ही वसुमती ने कहा– माताजी! आप मुझे जिस उद्देश्य से खरीदना चाहती हैं और जो कार्य लेना चाहती हैं वह मुझ से न होगा। मेरा और आपका आचार एक दूसरे से विरुद्ध है। आप पुरुषों को विभ्रम और मोह में डाल कर पतन की ओर ले जाना चाहती हैं और मैं उन्हें इस मोह से निकाल कर ऊँचा उठाना चाहती हूँ। जिस जाल में आप उन्हें फँसाना चाहती हैं, मैं उससे छुड़ाना चाहती हूँ। इसलिए मुझे खरीदने से आपको कोई लाभ न होगा। मैं आपके साथ नहीं चलूँगी।

वेश्या ने वसुमती को सब तरह के प्रलोभन दिए। उसे एक दासी की हालत से उठा कर सांसारिक सुखों की चरम सीमा पर पहुँचाने का वचन दिया किन्तु वसुमती अपने सतीत्व के सामने स्वर्गीय भोगों को भी तुच्छ समझती थी। संसार के सारे सुख इकट्ठे होकर भी उसे धर्म से विचलित न कर सकते थे। उसने वेश्या के सभी प्रलोभनों को ठुकरा दिया।

वेश्या ने सोचा– यह लड़की इस प्रकार न मानेगी। इस भीड़ में खड़े हुए बड़े बड़े आदमी मेरी हाँ में हाँ मिलाने वाले हैं। जिसे

मैं न्याय कह दूँ वही उनके लिए न्याय है। सभी मेरे इशारे पर नाचते हैं। किसी में मेरा विरोध करने का साहस नहीं है, इस लिए इसे जबर्दस्ती पकड़ कर ले चलना चाहिए। वहाँ पहुँचने के बाद अपने आप ठीक हो जाएगी।

यह सोच कर वेश्या ने उससे कहा— तुम यहाँ बिकने के लिए आई हो। बीस लाख मोहरें तुमने अपनी कीमत स्वयं बताई है। जो इतनी मोहरें दे दे उसका तुम पर अधिकार हो जाता है। फिर वह तुम्हें कहीं ले चले और कुछ काम ले, तुम्हें विरोध करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता। बिकी हुई वस्तु पर खरीदने वाले का पूर्ण अधिकार होता है। मैंने तुम्हें खरीद लिया है। तुम्हारे आराम और सन्मान के लिए अब तक मैं तेरी खुशामद करती रही। यदि तुम ऐसे न चलोगी तो मैं जबर्दस्ती ले चलूँगी। यह कह कर वेश्या ने भीड़ पर कटाक्ष भरी नजर फैंकी। उसके समर्थक कुछ लोग हाँ में हाँ मिला कर कहने लगे— आप बिल्कुल ठीक कहती हैं। आपका पूरा अधिकार है। आप इससे अपनी इच्छानुसार कोई भी काम ले सकती हैं।

लोगों की बात सुन कर वसुमती मन ही मन सोचने लगी— ये भोले प्राणी किस प्रकार कामान्ध होकर पाप का समर्थन कर रहे हैं। प्रभो! इन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो। उसने प्रकट में कहा—यह भीड़ ही नहीं अगर सारा संसार प्रतिकूल हो जाय तो भी मुझे धर्म से विचलित नहीं कर सकता।

वसुमती की दृढ़ता को देख कर भीड़ में से कुछ लोग उसके भी समर्थक बन गए और कहने लगे—कोई किसी पर जबर्दस्ती नहीं कर सकता। वेश्या के साथ जाना या न जाना इसकी इच्छा पर निर्भर है।

वेश्या के समर्थक अधिक थे इस लिए उसका साहस बढ़ गया। उसने अपने नौकरों को आज्ञा दे दी और स्वयं वसुमती को पकड़ने

के लिए आगे बढ़ी। वसुमती कुछ पीछे हट गई।

रथी अब तक अलग खड़ा हुआ केवल बातें सुन रहा था। वसुमती की दुर्दशा देख कर उसे अपनी स्त्री पर क्रोध आ रहा था। उसे पकड़ने के लिए वेश्या को आगे बढ़ती देख कर उससे न रहा गया। म्यान से तलवार निकाल कर कड़कते हुए बोला— सावधान! इसकी इच्छा के विना अगर मेरी बेटी को हाथ लगाया तो तुम्हारी खैर नहीं है। यह कहकर वह वसुमती के पास खड़ा होगया।

हाथ में नंगी तलवार लिए हुए कुपित रथी के भीषण रूप को देख कर वेश्या डर गई। भय से पीछे हट कर वह चिल्लाने लगी— देखो! ये मुझे तलवार से मारते हैं। जब लड़की बिक चुकी है तो अब इन्हें बोलने का क्या अधिकार है? इन्हें केवल कीमत लेने से मतलब है और मैं पूरी कीमत देने के लिए तैयार हूँ, फिर इन्हें बीच में पड़ने का क्या अधिकार है। वेश्या के समर्थक भी उसके साथ चिल्लाने लगे। रथी को आगे बढ़ते देख कर कुछ लोग उसकी ओर भी बोलने लगे। दोनों दल तन गए। झगड़ा बढ़ने लगा।

वसुमती ने सोचा— दोनों पक्ष अज्ञानता के कारण एक दूसरे के रक्त पिपासु बने हुए हैं। क्रोधवश एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हैं। एक दल तो अपने स्वार्थ, वासना और लोभ में पड़ कर अन्धा हो रहा है, इस समय उसे किसी प्रकार नहीं समझाया जा सकता, किन्तु दूसरा पक्ष न्याय की रक्षा के लिए हिंसा का आश्रय ले रहा है। धर्म की रक्षा के लिए अधर्म की शरण ले रहा है। क्या धर्म अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता? क्या पाप की अपेक्षा वह निर्बल है? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। धर्म अपनी रक्षा स्वयं कर सकता है। उसे अधर्म का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। धर्म की तो सदा विजय होती है फिर वह पाप की शरण क्यों ले। हिंसा पाप है। न्याय की रक्षा के लिए उसकी

आवश्यकता नहीं है। यह सोच कर उसने रथी से कहा–

पिताजी! शान्त रहिए। क्रोध और हिंसा को हृदय में कभी स्थान न देना चाहिए। क्या आप माताजी की शिक्षा को भूल गए? मेरी रक्षा के लिए तलवार की आवश्यकता नहीं है। धर्म अपनी रक्षा स्वयं करता है। आप तलवार को म्यान में कर लीजिए।

रथी अधीर हो उठा। उसे विश्वास न था कि ऐसे समय में भी अहिंसा काम कर सकती है। उसने कहा– बेटी! तेरा विरोध करने का साहस मुझ में नहीं है, इस लिए बिना सोचे समझे मान लेता हूँ, किन्तु क्या यह उचित कहा जा सकता है कि मेरी बेटी पर मेरी आँखों के सामने अत्याचार हो और मैं निर्जीव स्तम्भ की तरह खड़ा रहूँ। रक्षा के लिए प्रयत्न न करूं। इस समय आततायी को दण्ड देने के सिवाय मेरा और क्या कर्तव्य हो सकता है?

पिताजी! आध्यात्मिक बल में शारीरिक बल से अनन्तगुणी शक्ति है मुझे इस बात पर दृढ़ विश्वास है, इस लिए पाशविक बल मेरा कुछ नहीं कर सकता। आप किसी बात की चिन्ता मत कीजिए। मैं पहले कह चुकी हूँ, धर्म अपनी रक्षा स्वयं करता है।

रथी को तलवार म्यान में रखते हुए देख कर वेश्या का साहस और बढ़ गया। वह सोचने लगी कि वसुमती केवल ऊपर से विरोध करती है, वास्तव में मेरे साथ जाना चाहती है। उसने फिर खींचातानी शुरू की।

वसुमती को शारीरिक बल पर विश्वास न था, इस लिए हथियार द्वारा या दूसरे किसी उपाय से विरोध करना उसने उचित न समझा। आत्मशक्ति पर विश्वास करके वह वहीं बैठ गई और कहने लगी– जब मैं नहीं जाना चाहती तो मुझे कौन ले जा सकता है?

वेश्या ने सोचा अब इसे उठा कर पालकी में डाल देना चाहिए।

वसुमती को उठाने के लिए वह आगे बढ़ी। इतने में बहुत से बन्दर वेश्या पर टूट पड़े। उसके शरीर को नोच डाला। वेश्या सहायता के लिए चिल्लाई किन्तु उसके नौकर तथा समर्थक बन्दरों से डरकर पहले ही भाग चुके थे। कोई उसकी सहायता के लिए न आया।

बन्दरों ने वेश्या को लोहूलुहान कर दिया। उसके करुण चीत्कार को सुन कर वसुमती से न रहा गया। उसने बन्दरों को डाट कर कहा– हटो! माता को छोड़ दो। इसे क्यों कष्ट दे रहे हो? वसुमती के डाटते ही सभी बन्दर भाग गए।

वेश्या के पास आकर वसुमती ने उसे उठाया और सान्त्वना देते हुए उसके शरीर पर हाथ फेरा। वेश्या के सारे शरीर में भयङ्कर वेदना हो रही थी किन्तु वसुमती का हाथ लगते ही शान्त हो गई।

कृतज्ञता के भार से दबी हुई वेश्या आँखें नीची किए सोच रही थी कि अपकारी का भी उपकार करने वाली यह कोई देवी है। इसके हाथ का स्पर्श होते ही मेरी सारी पीड़ा भाग गई। वास्तव में यह कोई महासती है।

बन्दरों के चले जाने पर वेश्या के परिजन और समर्थक फिर वहाँ इकट्ठे हो गए और विविध प्रकार से सहानुभूति दिखाने लगे। वेश्या के हृदय में वसुमती द्वारा किया हुआ उपकार घर कर चुका था इस लिए सूखी सहानुभूति उसे अच्छी न लगी।

अपने व्यवहार पर लज्जित होते हुए वेश्या ने वसुमती से कहा– देवि! सांसारिक वासनाओं में पली हुई होने के कारण मैं आपके वास्तविक स्वरूप को न जान सकी। मैंने आपकी शिक्षा को मजाक समझा, सदाचार को ढोंग समझा। धर्म, न्याय और सतीत्व का मेरे हृदय में कोई स्थान न था। इसी कारण अज्ञानतावश मैंने आप के साथ दुर्व्यवहार किया। अहिंसा और सतीत्व का साक्षात् आदर्श रख कर आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं आपके ऋण से कभी मुक्त

नहीं हो सकती। आपके साथ किए गए दुर्व्यवहार के लिए मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। आपकी आत्मा महान् है। आशा है, अज्ञानतावश किए गए उस अपराध के लिए आप मुझे क्षमा कर देंगी।

अब मैंने अपने पाप के पेशे को छोड़ देने का निश्चय कर लिया है। आपने मेरे जीवन की धारा को बदल दिया। यह मेरे गौरव की बात होती यदि आपके चरणों से मेरा घर पवित्र होता। किन्तु उस गन्दे, नारकीय वातावरण में आप सरीखी पवित्र आत्मा को ले जाना मैं उचित नहीं समझती। यह कह कर अपने अपराध के लिए बार बार क्षमा मांगती हुई वेश्या अपने घर चली गई। वसुमती तथा वेश्या की बात बिजली के समान सारे शहर में फैल गई।

नगरी में धनावह नाम का एक धर्मात्मा सेठ रहता था। उसके कोई सन्तान न थी। वसुमती की प्रशंसा सुन कर उसकी इच्छा हुई कि ऐसी धर्मात्मा सती मेरे घर रहे तो कितना अच्छा हो। उसके रहने से मेरे घर का वातावरण पवित्र हो जायगा और मैं निर्विघ्न धर्माचरण कर सकूँगा।

उत्तरोत्तर घटनाओं को देख कर रथी का वसुमती की ओर अधिकाधिक झुकाव हो रहा था। ऐसी महासती को बेचना उसे बहुत बुरा लग रहा था। वह बार बार वसुमती से वापिस लौटने की प्रार्थना करने लगा और वसुमती उसे सान्त्वना देने लगी।

इतने में धनावह सेठ वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने रथी को मोहरें देना स्वीकार कर लिया और वसुमती को अपने घर ले जाने के लिए कहा। वसुमती ने पूछा—पिताजी! आपके घर का क्या आचार है?

सेठ ने उत्तर दिया—पुत्री! यथाशक्ति धर्म की आराधना करना ही मेरे घर का आचार है। मैं बारह व्रतधारी श्रावक हूँ। घर पर आए हुए अतिथि को विमुख न जाने देना मेरा नियम है। धार्मिक कार्यों में मेरी सहायता करना तुम्हारा कार्य होगा। मैं तुम्हें विश्वास

दिलाता हूँ कि मेरे यहाँ तुम्हारे सत्य और शील के पालन में किसी प्रकार की बाधा न होगी।

वसुमती धनावह सेठ के साथ जाने को तैयार हो गई और रथी से कहने लगी– पिताजी! आप मेरे साथ चलिए और बीस लाख मोहरें लाकर माताजी को दे दीजिए।

रथी के हृदय में अपार दुःख हो रहा था। उसके पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। धीरे धीरे सभी धनावह सेठ के घर आए। धनावह ने तिजोरी से बीस लाख मोहरें निकाल कर रथी के सामने रख दीं और कहा– आप इन्हें ले लीजिए।

रथी ने कहा– सेठ साहेब! अपनी इस पुत्री को अलग करने की मेरी इच्छा नहीं है किन्तु मेरे घर के कलुषित वातावरण में यह नहीं रहना चाहती। अगर इसकी इच्छा है तो आपके घर रहे किन्तु इसे बेचकर मैं पाप का भागी नहीं बनना चाहता। धनावह सेठ मोहरें देना चाहता था किन्तु रथी उन्हें लेना नहीं चाहता था।

यह देखकर वसुमती रथी से कहने लगी– सेठजी और आप दोनों मेरे पिता हैं। मैं दोनों की कन्या हूँ। इस नाते आप दोनों भाई भाई हैं। भाइयों में खरीदने और बेचने का प्रश्न ही नहीं होता। बीस लाख मोहरें आप अपने भाई की तरफ से माताजी को भेट दे दीजिए। यह कह कर उसने धनावह सेठ के नौकरों द्वारा मोहरें रथी के घर पहुँचवा दीं। रथी और धनावह सेठ का सम्बन्ध सदा के लिए दृढ़ हो गया।

धनावह सेठ की पत्नी का नाम मूला था। उसका स्वभाव सेठ के सर्वथा विपरीत था। सेठ जितना नम्र, सरल, धार्मिक और दयालु था, मूला उतनी ही कठोर, कपटी और निर्दय थी। सेठ दया, दान आदि धार्मिक कार्यों को पसन्द करता था किन्तु मूला को इन सब बातों से घृणा थी।

वसुमती को अपने साथ लेकर सेठ ने मूला से कहा— हमारे सौभाग्य से यह गुणवती कन्या प्राप्त हुई है। इसे अपनी पुत्री समझना। इसके रहने से हमारे घर में धर्म, प्रेम और सुख की वृद्धि होगी।

मूला ऊपर से तो सेठ की बातें सुन रही थी किन्तु हृदय में दूसरी ही बातें सोच रही थी। सेठजी इस सुन्दरी को क्यों लाए हैं? साथ में इसकी प्रशंसा भी क्यों कर रहे हैं? ऊपर से तो पुत्री कह रहे हैं किन्तु हृदय में कुछ और बात है। भला इसके सौन्दर्य को देख कर किसका चित्त विचलित न होगा।

हृदय के भावों को मन ही में दबा कर मूला ने सेठ की बात ऊपर से स्वीकार कर ली। वसुमती सेठ के घर रहने लगी। उसके कार्य, व्यवहार तथा चारित्र से घर के सभी लोग प्रसन्न रहने लगे। सभी उसकी प्रशंसा करने लगे। सेठजी स्वयं भी उसके कार्यों को सराहा करते थे किन्तु मूला पर इन सब का उल्टा असर पड़ रहा था।

एक दिन सेठ ने वसुमती से पूछा— बेटी! तेरा नाम क्या है?

पिताजी! मैं आपकी पुत्री हूँ। पुत्री का नाम वही होता है जो माता पिता रक्खें। वसुमती ने उत्तर दिया।

बेटी! मैंने तेरी सारी बातें सुन ली हैं। जैसे चन्दन काटने वाले को भी सुगन्ध और शान्ति देता है इसी प्रकार तुम अपकारी पर भी उपकार करने वाली हो, इसलिए मैं तुम्हारा नाम चन्दनबाला रखता हूँ। सेठ ने पुराने नाम की छानबीन करना उचित न समझा। सभी लोग वसुमती को चन्दनबाला कहने लगे।

एक दिन चन्दनबाला स्नान के बाद अपने बाल सुखा रही थी। इतने में सेठजी बाहर से आए और अपने पैर धोने के लिए पानी मांगा। चन्दनबाला गरम पानी, बैठने के लिए चौकी तथा पैर धोने का बर्तन ले आई और बोली— पिताजी! आप यहाँ विराजें। मैं आपके पैर धो देती हूँ।

सेठजी नहीं चाहते थे कि एक सती स्त्री से जिसे अपनी पुत्री मान लिया है, पैर धुलवाए जाँय। उन्होंने चन्दनबाला से बहुत कहा कि पैर धोने का कार्य उसके योग्य नहीं है किन्तु चन्दनबाला सेवा के कार्य को छोटा न मानती थी। वह इसे उच्च और आदर्श कर्तव्य समझती थी। पिता के पैर धोना वह अपना परम सौभाग्य मानती थी। उसने सेठजी को मना लिया और पैर धोने बैठ गई।

पैर धोते समय चन्दनबाला यह सोच कर बहुत प्रसन्न हो रही थी कि उसे पितृसेवा का अपूर्व अवसर मिला। सेठजी चन्दनबाला को अपनी निजी सन्तान समझ कर वात्सल्य प्रेम से गद्गद हो रहे थे। उनके मुख पर अपत्यस्नेह स्पष्ट झलक रहा था। चन्दनबाला और सेठ दोनों के हृदयों में पवित्र प्रेम का संचार हो रहा था।

पैर धोते समय सिर के हिलने से चन्दनबाला के बाल उसके मुंह पर आ रहे थे जिससे उसकी दृष्टि अवरुद्ध हो जाती थी। सेठजी ने उन बालों को उठा कर पीछे की ओर कर दिया।

मूला इस दृश्य को देख रही थी। हृदय मलीन होने के कारण प्रत्येक बात उसे उल्टी मालूम पड़ रही थी। सेठ को चन्दनबाला के केश ऊपर करते देख कर वह जल भुन कर रह गई। उसे विश्वास हो गया कि सेठ का चन्दनबाला के साथ अनुचित सम्बन्ध है। उसे घर से निकाल देने के लिए वह उपाय सोचने लगी।

मूला का व्यवहार चन्दनबाला के प्रति बहुत कठोर हो गया। उसके प्रत्येक कार्य में दोष निकाले जाने लगे। बात बात पर डाट पड़ने लगी, किन्तु चन्दनबाला इस प्रकार विचलित होने वाली न थी। वह मूला की प्रत्येक बात का उत्तर शान्ति और नम्रता के साथ देती। अपना दोष न होने पर भी उसे मान लेती और क्षमा याचना कर लेती। मूला झगड़ा करके वसुमती को निकालने में सफल न हुई। वह कोई दूसरा उपाय सोचने लगी।

एक बार सेठजी तीन चार दिन के लिए किसी बाहर गाँव को चले गए। चन्दनबाला को निकाल देने के लिए मूला ने इस अवसर को ठीक समझा। उसने सभी नौकरों को घर से बाहर ऐसे कार्यों पर भेज दिया जिससे वे तीन चार दिन तक न लौट सकें। घर का दरवाजा बन्द करके वह चन्दनबाला के पास आई और कहने लगी– तेरी सूरत तो भोली है किन्तु दिल में पाप भरा हुआ है। जिसे पिता कहती है उसी को पति बनाना चाहती है। जिसे मां कहती है उसकी सौत बनने चली है। पुरुष भी कितने धूर्त होते हैं, जिसे पुत्री कहते हैं उसी के लिए हृदय में बुरे विचार रखते हैं। अब मैंने सब कुछ देख लिया है। अपनी आँखों के सामने मैं यह कांड कभी न होने दूँगी। उस दिन सेठजी तुम्हारे मुँह पर हाथ क्यों फेर रहे थे ?

चन्दनबाला ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया–माताजी। मैं आप की पुत्री हूँ। पुत्री पर इस प्रकार सन्देह करना ठीक नहीं है। मैं सच्चे हृदय से आपको माता और सेठजी को पिता मानती हूँ। सेठजी भी मुझे शुद्ध हृदय से अपनी पुत्री समझते हैं। इसके लिए जैसे चाहें आप मेरी परीक्षा ले सकती हैं।

अच्छा, मैं देखती हूँ तू किस प्रकार परीक्षा देती है। मेरे पति ने तेरे इन केशों को छूआ है इस लिए पहले पहल मैं इन्हें ही दण्ड देना चाहती हूँ। यह कह कर मूला कैंची ले आई और चन्दनबाला के सुन्दर केशों को काट डाला।

अपने सुन्दर और लम्बे केशों के कट जाने पर भी चन्दनबाला पहले के समान ही प्रसन्न थी। उसके मुख पर विषाद की रेखा तक न थी। वह सोच रही थी–यह मेरे लिए हर्ष की बात है यदि केशों के कट जाने मात्र से माताजी का सन्देह दूर हो जाय।

मूला उसके प्रसन्न मुख को देख कर और कुपित हो गई। उस

ने और भी कठोर दण्ड देने का निश्चय किया। चन्दनबाला के सारे कपड़े उतार लिए और पुराने मैले कपड़े की एक काछ लगा दी। हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी डाल दी। इसके बाद एक पुराने भौंरे (तहखाने, तलघर) में उसे बन्द करके ताला लगा दिया। मूला को विश्वास हो गया कि चन्दनबाला वहीं पड़ी पड़ी मर जाएगी। उसे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि सौत बन कर उसके सुख सुहाग में बाधा डालने वाली अब नहीं रही।

इतने में उसके हृदय में भय का संचार हुआ। सोचने लगी– अगर कोई यहाँ आगया और चन्दनबाला के विषय में पूछने लगा तो क्या उत्तर दिया जाएगा? मकान के ताला बन्द करके वह अपने पीहर चली गई। सोचा– तीन चार दिन तो यह बात ढकी ही रहेगी, बाद मैं कह दूँगी कि वह किसी के साथ भाग गई।

भौंरे में पड़े पड़े चन्दनबाला को तीन दिन हो गए। उस समय उसके लिए भगवान् के नाम का ही एक मात्र सहारा था। वह नवकार मन्त्र का जाप करने लगी। उसी में इतनी लीन थी कि भूख प्यास आदि सभी कष्टों को भूल गई। नवकार मन्त्र के स्मरण में उसे अपूर्व आनन्द प्राप्त हो रहा था। मूला सेठानी को वह धन्यवाद दे रही थी जिसकी कृपा से ईश्वरभजन का ऐसा सुयोग मिला।

चौथे दिन दोपहर के समय धनावह सेठ बाहर से लौटे। देखा, घर का ताला बन्द है। सेठानी या नौकर चाकर किसी का पता नहीं है। सेठजी आश्चर्य में पड़ गए। उनके घर का द्वार कभी बन्द न होता था। अतिथियों के लिए सदा खुला रहता था।

सेठ ने सोचा– मूला अपने पीहर चली गई होगी। नौकर चाकर भी इधर उधर चले गए होंगे, किन्तु चन्दनबाला तो कहीं नहीं जा सकती। पड़ोसियों से पूछने पर मालूम पड़ा कि तीन दिन से उसका कोई पता नहीं है। इतने में एक नौकर बाहर से आया। पूछने पर

उसने कहा– सेठानी ने हम सब को बाहर भेज दिया था। केवल चन्दनबाला और सेठानी ही यहाँ रही थीं। इसके बाद क्या हुआ, यह मुझे मालूम नहीं है। सेठ मूला के स्वभाव की मलीनता और उसकी चन्दनबाला के प्रति दुर्भावना से परिचित थे। अनिष्ट की सम्भावना से उनका हृदय कांप उठा।

धनावह सेठ ने मूला के पास नौकर भेजा। सेठ का आगमन सुन कर एक बार तो मूला का हृदय धक सा रह गया किन्तु जल्दी से सम्भल कर उसने नौकर से कहा मुझे अभी दो चार दिन यहाँ काम है। तुम घर की चाबी ले जाओ और सेठजी को दे दो। मूला ने सोचा– दो चार दिन में चन्दनबाला मर जायगी फिर उसका कोई भी पता न लगा सकेगा। पूछने पर कह दूँगी, घर से चोरी करके वह किसी पुरुष के साथ भाग गई।

नौकर चाबी ले कर चला आया। सेठ ने घर खोला। चन्दनबाला जब कहीं दिखाई न दी तो उसका नाम ले कर जोर जोर से पुकारना शुरू किया।

चन्दनबाला ने सेठ की आवाज पहिचान कर क्षीण स्वर से उत्तर दिया– पिताजी! मैं यहाँ हूँ। आवाज के अनुसन्धान पर सेठ धीरे धीरे भौंरे के पास पहुँच गया। किवाड़ खोल कर अंधेरे में टटोलता हुआ वह चन्दनबाला के पास आ पहुँचा। यह जान कर वह बड़ा दुखी हुआ कि चन्दनबाला के हथकड़ी और बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। धीरे धीरे उसे उठाया और भौंरे से बाहर निकाला। चन्दनबाला के मुँडे हुए सिर, शरीर पर लगी हुई काष्ठ हथकड़ियों से जकड़े हुए हाथ तथा बेड़ियों से कसे हुए पैर देख कर सेठ के दुःख की सीमा न रही। वह जोर जोर से रोने लगा। विलाप करते हुए उसने कहा–वह दुष्टा तो तेरे प्राण ही ले चुकी थी। मेरा भाग्य अच्छा था, जिससे तुझे जीवित देख सका। मैं

बड़ा पापी हूँ, जिसके घर में तेरे समान सती स्त्री को ऐसा महान् कष्ट उठाना पड़ा।

चन्दनबाला सेठ को धैर्य बंधाने और सान्त्वना देने लगी। उसने बार बार कहा– पिताजी इसमें आपका और माताजी का कुछ दोष नहीं है। यह तो मेरे पिछले किए हुए कर्मों का फल है। किए हुए कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं। इसमें करने वाले के सिवाय और किसी का दोष नहीं होता।

सेठजी शोकसागर में डूब रहे थे। उन पर चन्दनबाला की किसी बात का असर न हो रहा था। सेठजी का ध्यान किसी कार्य की ओर खींच कर उनका शोक दूर करने के उद्देश्य से चन्दनबाला ने कहा– पिताजी! मुझे भूख लगी है। कुछ खाने को दीजिए। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो वस्तु सबसे पहले आपके हाथ में आवेगी उसी से पारणा करूँगी, इस लिए नई तैयार की हुई या बाहर से लाई हुई कोई वस्तु मैं स्वीकार न करूँगी।

सेठजी रसोई में गए किन्तु वहाँ ताला लगा हुआ था। इधर उधर देखने पर एक सूप में पड़े हुए उड़द के बाकले दिखाई दिए। वे घोड़ों के लिए उबाले गए थे और थोड़े से बाकी बच गए थे। चन्दनबाला की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सेठ उन्हीं को ले आया। चन्दनबाला के हाथ में बाकले देकर सेठ बेड़ी तोड़ने के लिए लुहार को बुलाने चला गया।

चन्दनबाला बाकले लेकर देहली पर बैठ गई। उसका एक पैर देहली के अन्दर था और दूसरा बाहर। पारणा करने से पहले उसे अतिथि की याद आई। वह विचारने लगी– मैं प्रतिदिन अतिथियों को देकर फिर भोजन करती हूँ। यदि इस समय कोई निर्ग्रन्थ साधु यहाँ पधार जाय तो मेरा अहोभाग्य हो। उन्हें शुद्ध भिक्षा देकर मैं अपना जीवन सफल करूँ। देहली पर बैठी हुई चन्दनबाला

इस प्रकार भावना भा रही थी।

उन दिनों श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थ अवस्था में थे। कैवल्यप्राप्ति के लिए कठोर साधना कर रहे थे। लम्बी तथा उग्र तपस्याओं द्वारा अपने शरीर को सुखा डाला था। एक बार उन्होंने अतिकठोर अभिग्रह धारण किया। उनका निश्चय था—

राजकन्या हो, अविवाहिता हो, सदाचारिणी हो, निरपराध होने पर भी जिसके पांवों में बेड़ियाँ तथा हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई हों, सिर मुण्डा हुआ हो, शरीर पर काछ लगी हुई हो, तीन दिन का उपवास किए हो, पारणे के लिए उड़द के बाकले सूप में लिए हो, न घर में हो, न बाहर हो, एक पैर देहली के भीतर तथा दूसरा बाहर हो, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्न मुख हो और आखों में आँसू भी हों, इन तेरह बातों के मिलने पर ही आहार ग्रहण करूँगा। अगर ये बातें न मिलें तो आजीवन अनशन है।

आहार की गवेषणा में फिरते हुए भगवान् को पाँच मास पच्चीस दिन होगए किन्तु अभिग्रह की बातें पूरी न हुईं। सभी लोग भगवान् की शरीर रक्षा के लिए चिन्तित थे। साथ में उनके कठिन अभिग्रह के लिए आश्चर्यचकित भी थे।

घूमते घूमते भगवान् कौशाम्बी आ पहुँचे। नगरी में आहार की गवेषणा करते हुए धनावह सेठ के घर आए। चन्दनबाला को उस रूप में बैठी हुई देखा। अभिग्रह की और बातें तो मिल गईं किन्तु एक बात न मिली—उसकी आँखों में आँसू न थे। भगवान् वापिस लौटने लगे।

उन्हें वापिस लौटते देख चन्दनबाला की आँखों में आँसू आ गए। वह अपने भाग्य को कोसने लगी कि ऐसे महान् अतिथि आकर भी मेरे दुर्भाग्य से वापिस लौट रहे हैं। भगवान् ने अचा-

नक पीछे देखा। उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। तेरहवीं बात भी पूरी होगई। उन्होंने चन्दनबाला के पास आकर हाथ फैला दिए। सांसारिक वासनाओं से कलुषित हृदय वाली सारथी की स्त्री और मूला जिसे अनाथ, अवारागिर्द और भ्रष्ट समझती थीं, त्रिलोक पूजित भगवान् उसी के सामने भिक्षुक बन कर खड़े थे।

चन्दनबाला ने आनन्द से पुलकित होकर उड़द के बाकले बहरा दिए। उसी समय आकाश में दुन्दुभि बजने लगी। देवों ने जय-नाद किया—सती चन्दनबाला की जय। धनावह के घर फूल और सोनैयों की वृष्टि होने लगी। चन्दनबाला की हथकड़ी और बेड़ियाँ आभूषणों के रूप में बदल गईं। सारा शरीर दिव्य वस्त्रों से सुशोभित होगया और सिर पर कोमल सुन्दर और लम्बे केश आगए। उसी समय वहाँ रत्नजटित दिव्य सिंहासन प्रगट हुआ। इन्द्र आदि देवों ने चन्दनबाला को उस पर बैठाया और स्वयं स्तुति करने लगे।

भगवान् महावीर के पारणे की बात बिजली के समान सारे नगर में फैल गई। मूला को भी इस बात का पता चला। अपने घर पर सोनैयों की वृष्टि हुई जान कर वह भागी हुई आई। घर पहुँचने पर सामने दिव्य वस्त्रालङ्कार पहिन कर सिंहासन पर बैठी हुई चन्दनबाला को देख कर वह आश्चर्यचकित रह गई।

मूला को देखते ही चन्दनबाला उसके सामने गई। विनयपूर्वक प्रणाम करके अपने सुन्दर केशों से उसके पैर पोंछती हुई कहने लगी— माताजी! यह सब आप के चरणों का प्रताप है। लज्जा के कारण मूला का मस्तक नीचे झुक गया। चन्दनबाला उसका हाथ पकड़ कर अन्दर ले गई और अपने साथ सिंहासन पर बिठा लिया।

चन्दनबाला की बेड़ियाँ खुलवाने के लिए सेठ लुहार के पास गया हुआ था। उसने भी सारी बातें सुनीं, प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया। मूला को चन्दनबाला के साथ बैठी हुई देख कर सेठ

को क्रोध आ गया। वह मूला को डाटने लगा।

चन्दनबाला सेठजी को देखते ही सिंहासन से उतर गई। उन्हें मूला पर क्रुद्ध होते हुए देख कर कहने लगी– पिताजी! इस में माताजी का कोई दोष नहीं है। प्रत्येक घटना अपने किए हुए कर्मों के अनुसार ही घटती है। हमें इनका उपकार मानना चाहिए, जिससे भगवान् महावीर का पारणा हमारे घर हो सका। इन्द्र आदि देवों के द्वारा मुझे मालूम पड़ा कि भगवान् के तेरह बातों का अभिग्रह था। वह अभिग्रह माताजी की कृपा से ही पूरा हुआ है। सेठ का क्रोध शान्त करके चन्दनबाला दोनों के साथ सिंहासन पर बैठ गई।

धीरे धीरे शहर में यह बात भी फैल गई कि जो लड़की उस दिन बाजार में बिक रही थी, जिसने वेश्या के साथ जाना अस्वीकार किया था और अन्त में धनावह सेठ के हाथ बिकी थी वह चम्पानगरी के राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की कन्या है। उसी के हाथ से भगवान् महावीर का पारणा हुआ है।

चन्दनबाला को सेठ के पास छोड़ कर अपने घर लौटने के बाद रथी बहुत ही दुखी रहने लगा। उसे वे बीस लाख सोनैये बहुत बुरे लगते थे। उसकी स्त्री उसे विविध प्रकार से खुश करने का प्रयत्न करती किन्तु वे बातें उसे जले पर नमक के समान मालूम पड़तीं। पास पड़ोस के लोग भी चन्दनबाला की सदा प्रशंसा करते। इन सब बातों का रथी की स्त्री पर बहुत प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगी कि चन्दनबाला मुझे ही क्यों बुरी लगती है। सारी दुनिया तो उसकी प्रशंसा करती है। उसे सभी बातों में अपना ही दोष दिखाई देने लगा। पति पर किया गया आक्षेप भी निराधार मालूम पड़ा। धीरे धीरे उसने वेश्या का झगड़ना तथा दूसरी बातें भी सुनीं। उसे विश्वास हो गया कि सारा दोष मेरा ही है। मैंने चन्दनबाला के असली रूप को नहीं समझा। उसे बहुत पश्चात्ताप

होने लगा। चन्दनबाला को वापिस लाने का प्रयत्न व्यर्थ समझ कर उसने निश्चय किया— मैं भी आज से चन्दनबाला के समान ही आचरण करूँगी। उसी के समान घर के सारे काम, नम्रतापूर्ण व्यवहार तथा ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी। भोगविलास, वासनाओं तथा सभी बुरी बातों से दूर रहूँगी। इन बीस लाख मोहरों को अलग ही पड़ी रहने दूँगी। अपने काम में न लाऊँगी।

रथी की स्त्री का स्वभाव एक दम बदल गया। उसे देख कर रथी और पड़ोसियों को आश्चर्य होने लगा।

भगवान् महावीर के पारणे की बात सुन कर रथी की स्त्री ने भी चन्दनबाला के दर्शन करने के लिए अपनी इच्छा प्रकट की। रथी को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों चन्दनबाला के दर्शनों के लिए धनावह सेठ के घर की ओर रवाना हुए।

वेश्या भी सारा हाल सुन कर चन्दनबाला के पास चली। रथी की स्त्री और वेश्या दोनों चन्दनबाला के पास पहुँच कर अपने अपराधों के लिए पश्चात्ताप करने लगीं। चन्दनबाला ने सारा दोष अपने कर्मों का बता कर उन्हें शान्त किया। रथी और सेठ भाई भाई के समान एक दूसरे से मिले। रथी की स्त्री और वेश्या ने अपना जीवन सुधारने के लिए चन्दनबाला का बहुत उपकार माना।

राजा शतानीक की रानी ने भी सारी बातें सुनीं। अपनी बहिन* की पुत्री के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के लिए उसने अपने पति को ही दोषी समझा। उसने राजा शतानीक को बुला

---

* इतिहास से पता चलता है कि दधिवाहन राजा की तीन रानियाँ थीं— अभया, पद्मावती और धारिणी। जिस समय का यह वर्णन है उस समय केवल धारिणी थी। अभया मारी गई थी और पद्मावती दीक्षा ले चुकी थी। मृगावती और पद्मावती दोनों महाराजा चेटक (चेड़ा) की पुत्रियाँ थीं। वे दोनों सगी बहनें थीं और धारिणी पद्मावती की सपत्नी थी। इसी सम्बन्ध से मृगावती चन्दनबाला की मौसी थी।

कर कहा— आपके लोभ के कारण कैसा अन्याय हुआ, कितनी निर्दोष तथा पवित्र आत्माओं को भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ा है, यह आप नहीं जानते। मेरे बहुत समझाने पर भी आपने शान्तिपूर्वक राज्य करते हुए मेरे बहनोई राजा दधिवाहन पर चढ़ाई कर दी। फल स्वरूप वे जंगल में चले गए। रानी धारिणी का कोई पता ही नहीं है, उनकी लड़की को आपके किसी रथी ने यहाँ लाकर बाजार में बेचा। उसे कितनी बार अपमानित होना पड़ा, कितने कष्ट उठाने पड़े, यह आपको बिल्कुल मालूम नहीं है। आज उसके हाथ से परम तपस्वी भगवान् महावीर का पारणा हुआ है।

जिस राज्य के लिए आपने ऐसा अन्याचार किया, क्या वह आपके साथ जायगा? आपको निरपराध राजा दधिवाहन पर चढ़ाई करने, चम्पा की निर्दोष प्रजा को लूटने और मारकाट मचाने का क्या अधिकार था? मृगावती परम सती थी। उसका तेज इतना चमक रहा था कि शतानीक उसके विरुद्ध कुछ न बोल सका। अपनी भूल को स्वीकार करते हुए उसने कहा— मैंने राज्य के लोभ से चम्पा की निर्दोष प्रजा पर अत्याचार किया, यह स्वीकार करता हूँ, लेकिन तुम्हारी बहिन की लड़की से मेरी कोई शत्रुता न थी। दधिवाहन की तरह वह मेरी भी पुत्री है। अगर उसके विषय में मुझे कुछ भी मालूम होता तो उसे किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़ता। खैर, अब उसे यहाँ बुला लेना चाहिए।

शतानीक ने उसी समय सामन्तों को बुलाया और चन्दनबाला को सन्मान पूर्वक लाने की आज्ञा दी। सामन्त गण पालकी लेकर धनावह सेठ के घर पहुँचे और चन्दनबाला को शतानीक का सन्देश सुनाया। चन्दनबाला ने उत्तर दिया— मैं अब महलों में जाना नहीं चाहती इस लिए आप मुझे क्षमा करें। मौसाजी और मौसीजी ने मुझे बुला कर जो अपना स्नेह प्रदर्शित किया है, उस

के लिए मैं उनकी कृतज्ञ हूँ।

सामन्तों ने बहुत अनुनय विनय की किन्तु चन्दनबाला ने पाप से परिपूर्ण राजमहलों में जाना स्वीकार न किया। उसने सामन्तों को समझा बुझा कर वापिस कर दिया। सामन्तों के खाली हाथ वापिस लौट आने पर राजा और रानी ने चन्दनबाला को लाने के लिए स्वयं जाने का निश्चय किया।

राजा और रानी की सवारी बड़े बड़े सामन्त और उमरावों के साथ धनावह सेठ के घर चली। नगर में बात फैलने से बहुत से नागरिक और सेठ साहूकार भी सवारी के साथ हो लिए। सेठ के घर बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गई। पास पहुँचने पर राजा और रानी सवारी से उतर गए।

चन्दनबाला के पास जाकर राजा ने कहा— बेटी! मुझ पापी को क्षमा करो। मैंने भयङ्कर पाप किए हैं। तुम्हारे सरीखी सती को कष्ट में डाल कर महान् अपराध किया है। तुम देवी हो। प्राणियों को क्षमा करने वाली तथा उनके पाप को धो डालने वाली हो। तुम्हारी कृपा से मुझ पापी का जीवन भी पवित्र हो जायगा इस लिए महल में पधार कर मुझे कृतार्थ करो।

चन्दनबाला ने दोनों को प्रणाम करके उत्तर दिया— आप मेरे पिता के समान पूज्य हैं। अपराध के कारण मैं आपको अनादरणीय नहीं समझ सकती। आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है, किन्तु आप स्वयं जानते हैं कि विचारों पर वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। जिन महलों में सदा लूटने खसोटने तथा निरपराधों पर अत्याचार करने का ही विचार होता है उसमें जाना मेरे लिए कैसे उचित हो सकता है। जहाँ का वातावरण मेरी भावना और विचारों के सर्वथा प्रतिकूल हो वहाँ मैं कैसे जाऊँ? आपके भेजे हुए सामन्त भी मेरे लिए आप ही के समान आदरणीय हैं।

मैं उन्हीं के कहने पर आ जाती किन्तु उस दूषित वातावरण में जाना मैंने ठीक नहीं समझा। चन्दनबाला ने अपना कथन जारी रखते हुए कहा— आप ही बताइए! मेरे पिता का क्या अपराध था जिससे आपने चम्पा पर चढ़ाई की? यदि आप को चम्पा का लोभ था तो आप उस पर कब्जा कर लेते। मेरे पिता तो स्वयं ही उसे छोड़ कर चले गए थे। अगर सेना ने आपका सामना किया था तो यह सेना का अपराध था। निर्दोष प्रजा ने आपका क्या बिगाड़ा था जिससे उस पर अमानुषिक अत्याचार किया गया?

चन्दनबाला की बातों को शतानीक सिर नीचा किए चुपचाप सुन रहा था। उसके पास कोई उत्तर न था।

वह फिर कहने लगी— मैं यह नहीं कहना चाहती कि राजधर्म का त्याग किया जाय, किन्तु राजधर्म प्रजा की रक्षा करना है। उसका विनाश नहीं। क्या चम्पा को लूट कर आपने राजधर्म का पालन किया है? क्या आप को मालूम है कि आपकी सेना ने चम्पा के निवासियों पर कैसा अत्याचार किया है? वहाँ के निर्दोष नागरिकों के साथ कैसा पैशाचिक व्यवहार किया है? क्या आप नहीं जानते कि अन्धे सैनिकों को खुली छुट्टी दे देने पर क्या होता है? सभ्य नागरिकों को लूटना, खसोटना, मारना, काटना और उनकी बहू बेटियों का अपमान करना ऐसा कोई भी अत्याचार नहीं है जिससे वे हिचकते हों।

जब आपका एक रथी मुझे और मेरी माता को भी दुर्भावना से पकड़ कर जंगल में ले गया तो न मालूम प्रजा की बहू बेटियों के साथ कैसा व्यवहार हुआ होगा? मेरी माता वीराङ्गना थी, इस लिए सतीत्व की रक्षा के लिए उसने अपने प्राण त्याग दिए और उस रथी को सदा के लिए धार्मिक तथा सदाचारी बना दिया। जिस माता में इतने बलिदान की शक्ति न हो क्या उस पर अत्या-

चार होने देना ही राजधर्म है ?

चन्दनबाला के मुख से धारिणी की मृत्यु का समाचार सुन कर मृगावती को बहुत दुःख हुआ। वह शोक करने लगी कि मेरे पति के अत्याचार से पीड़ित हो कर कितनी माताओं को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण त्यागने पड़े होंगे। कितनी अपने सतीत्व को खो बैठी होंगी। धिक्कार है ऐसी राज्यलिप्सा को। चन्दनबाला ने मृगावती को सान्त्वना देते हुए कहा— मेरी माता ने पवित्र उद्देश्य से प्राण दिए हैं। इस प्रकार प्राण देने वाले विरले ही होते हैं। उनके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो यह कह रही हूँ— जिस राजमहल में चलने के लिए मुझे कहा जा रहा है उसमें किए गए विचारों का परिणाम कैसा भयङ्कर है।

वह फिर कहने लगी— राजा का कर्तव्य है कि वह अपने नगर तथा देश में होने वाली घटनाओं से परिचित रहे। क्या आपको मालूम है कि आप के नगर में कौन दुखी है ? किस पर कैसा अत्याचार हो रहा है ? कैसा अनीतिपूर्ण व्यवहार खुल्लम-खुल्ला हो रहा है ? आप ही की राजधानी में दास दासियों का क्रयविक्रय होता है। क्या आपने कभी इस नीच व्यापार पर ध्यान दिया है ? मैं स्वयं इसी नगर के चौराहे पर बिकी हूँ। मुझे एक वेश्या खरीद रही थी। मेरे इन्कार करने पर उसने बलपूर्वक ले जाना चाहा। बहुत से नागरिक भी उसकी सहायता के लिए तैयार हो गए। अकस्मात् बन्दरों के बीच में आ जाने से वेश्या का उद्देश्य पूरा न हुआ। नहीं तो अपने शील की रक्षा के लिए मुझे कौनसा उपाय अङ्गीकार करना पड़ता, यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

भाग्य से रथी को बीस लाख सोनैये दे कर सेठजी मुझे अपने घर ले आए। इन्होंने मुझे अपनी पुत्री के समान रक्खा और आज भगवान् महावीर का पारणा हुआ।

आप को इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं। महल में बैठ कर आप प्रजा पर अत्याचार करने, उसकी गाढ़ी कमाई को लूट कर अपने भोगविलास में लगाने तथा निर्दोष जनता को सताने का विचार करते हैं, प्रजा के दुःख को दूर करने का नहीं। क्या यही राजधर्म है? क्या यही आपका कर्तव्य है? क्या कभी आप ने सोचा है कि पाप का फल हर एक को भोगना पड़ता है?

जिस महल में रहते हुए आपके विचार ऐसे गन्दे हो गए उसमें आना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता। इस लिए क्षमा कीजिए। यहीं पर रह कर मुझे भगवान् महावीर के पारणे का लाभ प्राप्त हुआ। महलों में यह कभी नहीं हो सकता था।

रानी मृगावती शतानीक को समय समय पर हिंसाप्रधान कार्यों से बचने तथा प्रजा का पुत्र के समान पालन करने के लिए समझाया करती थी किन्तु उस समय वह न्याय और धर्म का उपहास किया करता था। चन्दनबाला के उपदेश का उस पर गहरा असर पड़ा। उत्तर में वह कहने लगा– हे सती! आपका कहना यथार्थ है। मैंने महान् पाप किए हैं। जनहत्या, मित्रद्रोह आदि बड़े से बड़ा पाप करने में भी मैंने सङ्कोच नहीं किया। मैं राजाओं का जन्म युद्ध, दमन, शासन और भोगविलास के लिए मानता था। मेरी ही अव्यवस्था के कारण आपकी माता को प्राण त्यागने पड़े और आपको महान् कष्ट उठाने पड़े। मैं इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ था कि मेरी आज्ञा का इस प्रकार दुरुपयोग होगा। मैंने चम्पा को लूटने की आज्ञा दी थी किन्तु स्त्रियों के लूटे जाने, उनका सतीत्व नष्ट होने आदि का मुझे बिल्कुल खयाल न था। मेरी आज्ञा की ओट में इस भयङ्कर अत्याचार के होने की बात मुझे आज ही मालूम पड़ी है। इसके लिए मैं ही अपराधी हूँ।

अगर मेरी नगरी में दास दासी के क्रय विक्रय की प्रथा न होती

तो आपको क्यों बिकना पड़ता? अगर राजा दधिवाहन के जाते ही मैंने उनके परिवार का खयाल किया होता तो आपको इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ता तथा आपकी माता को प्राण क्यों त्यागने पड़ते? इन सब कार्यों के लिए दोष मेरा ही है। मुझे अपने किए पर पश्चात्ताप हो रहा है। उन पापों के लिए मैं लज्जित हूँ। यह कहते हुए शतानीक की आँखें डबडबा आईं। उसके हृदय में महान् दुःख हो रहा था।

चन्दनबाला ने शतानीक को सान्त्वना देते हुए कहा—पिताजी! पश्चात्ताप करने से पाप कम हो जाता है। आपकी आज्ञा से जिन व्यक्तियों का स्वत्व लूटा गया है, उनका स्वत्व वापस लौटा दीजिए। भविष्य में ऐसा पाप न करने की प्रतिज्ञा कर लीजिए, फिर आप पवित्र हो जाएंगे। आज से यह समझिए कि राज्य आपके भोग-विलास के लिए नहीं है किन्तु आप राज्य तथा प्रजा की रक्षा करने के लिए हैं। अपने को शासन करने वाला न मान कर प्रजा की रक्षा तथा उसकी सुखवृद्धि के लिए राज्य का भार उठाने वाला सेवक मानिए फिर राज्य आपके लिए पाप का कारण न होगा। अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों पर अत्याचार करने के लिए नहीं, किन्तु दीन दुखी जनों की रक्षा के लिए कीजिए। शतानीक ने चन्दन-बाला की सारी बातें सिर झुका कर मान लीं।

इसके साथ साथ आप पुराने सब अपराधियों को क्षमा कर दीजिए। चाहे वह अपराध उन्होंने आपकी आज्ञा से किया हो या बिना आज्ञा के, किसी को दण्ड मत दीजिए। चन्दनबाला ने सब को अभय दान देने के उद्देश्य से कहा।

शतानीक ने उत्तर दिया—बेटी! मैं सभी को क्षमा करता हूँ किन्तु जिन अपराधियों ने कुलाङ्गनाओं का सतीत्व लूटा है, जिसके कारण आपकी माता को प्राण त्याग और आपको महान् कष्ट

सहन करने पड़े हैं, उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। उनका अपराध अक्षम्य है।

चन्दनबाला ने कहा— जिस प्रकार आपका अपराध केवल पश्चात्ताप से शान्त हो गया इसी प्रकार दूसरे अपराधी भी पश्चात्ताप के द्वारा छुटकारा पा सकते हैं। अगर उनके अपराध को अक्षम्य समझ कर आप दण्ड देना आवश्यक समझते हैं तो आपका अपराध भी अक्षम्य है। दण्ड देने से वैर की वृद्धि होती है। इस प्रकार बँधा हुआ वैर जन्म जन्मान्तर तक चला करता है, इस लिए अब तक के सब अपराधियों को क्षमा कर दीजिए।

शतानीक साहस करके बोला—आप का कहना बिल्कुल ठीक है। मुझे भी दण्ड भोगना चाहिए। आप मेरे लिए कोई दण्ड निश्चित कर सकती हैं।

शतानीक को अपने अपराध के लिए दण्ड मांगते देख कर रथी का साहस बढ़ गया। वह सामने आकर कहने लगा— महाराज! धारिणी की मृत्यु और इस सती के कष्टों का कारण मैं ही हूँ। आप मुझे कठोर से कठोर दण्ड दीजिए जिससे मेरी आत्मा पवित्र बने।

रथी के इस कथन को सुन कर सभी लोग दंग रह गए, क्योंकि इस अपराध का दण्ड बहुत भयङ्कर था।

चन्दनबाला रथी के साहस को देख कर प्रसन्न होती हुई शतानीक से कहने लगी— पिताजी! अपराधी को दण्ड देने का उद्देश्य अपराध का बदला लेना नहीं होता किन्तु अपराधी के हृदय में उस अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न करना होता है। बदला लेने की भावना से दण्ड देने वाला स्वयं अपराधी बन जाता है। अगर अपराधी के हृदय में अपराध के प्रति स्वयं घृणा उत्पन्न हो गई हो, वह उसके लिए पश्चात्ताप कर रहा हो और भविष्य में ऐसा न करने का निश्चय कर चुका हो तो फिर उसे दण्ड देने की आवश्यकता

नहीं रहती, इस लिए न आपको दण्ड लेने की आवश्यकता है न रथी पिता को। चन्दनबाला ने रथी के सुधरने का सारा वृत्तान्त सुनाया और राजा से कहा– मैं इनकी पुत्री हूँ। मेरे लिए ये, आप और सेठजी तीनों समान रूप से आदरणीय हैं। ये आपके भाई हैं।

शतानीक रथी के साहस पर आश्चर्य कर रहा था। चन्दनबाला के उपदेश ने उसमें क्रान्ति उत्पन्न कर दी। वह रथी के पास गया और उसे छाती से लगा कर कहने लगा– आज से तुम मेरे भाई हो। मैं तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा करता हूँ।

राजा और एक अपराधी के इस भाईचारे को देख कर सारी जनता आनन्द से गद्गद हो उठी।

शतानीक ने चन्दनबाला से फिर प्रार्थना की– बेटी! महल तो निर्जीव हैं, इस लिए उनमें किसी प्रकार का दोष नहीं हो सकता। दोष तो मुझ में था, उसी के कारण सारा वातावरण दूषित बना हुआ था। जब आपने मुझे पवित्र कर दिया तो महल अपने आप पवित्र होगए, इस लिए अब आप वहाँ पधारिए। आपके पधारने से वातावरण और पवित्र हो जाएगा।

चन्दनबाला ने सेठ से अनुमति लेकर जाना स्वीकार कर लिया। सेठ के आग्रह से राजा, रानी, रथी और रथी की स्त्री ने उसके घर भोजन किया। चन्दनबाला ने तेले का पारणा किया।

राजा, रानी, सेठ, सेठानी, रथी और रथी की स्त्री के साथ चन्दनबाला महल को रवाना हुई। नगर की सारी जनता सती का दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ी। चन्दनबाला योग्य स्थान पर खड़ी रह कर जनता को उपदेश देती हुई राजद्वार पर आ पहुँची। चन्दनबाला के पहुँचते ही महलों में धार्मिक वातावरण छा गया। जहाँ पहले लूटमार और व्यभिचार की बातें होती थीं, वहाँ अब धर्मचर्चा होने लगी।

शतानीक अब दधिवाहन को अपना मित्र मानने लगा था। उसके प्रति किए गए अपराध से मुक्त होने के लिए चम्पा का राज्य उसे वापिस सौंपना चाहता था। उसने दधिवाहन को खोज कर सन्मानपूर्वक लाने के लिए आदमी भेजे।

शतानीक के आदमी खोजते हुए दधिवाहन के पास पहुँचे। उसे नम्रतापूर्वक सारा वृत्तान्त सुनाया। फिर शतानीक की ओर से चलने के लिए प्रार्थना की। धारिणी की मृत्यु सुन कर दधिवाहन को बहुत दुःख हुआ, साथ ही चन्दनबाला के आदर्श कार्यों से प्रसन्नता। वह वन में रह कर त्यागपूर्वक अपना जीवन बिताना चाहता था। राज्य के भार को दुबारा अपने ऊपर न लेना चाहता था फिर भी शतानीक के सामन्तों का बहुत आग्रह होने के कारण शतानीक द्वारा भेजे हुए वाहन पर बैठ कर वह कौशाम्बी की ओर चला।

राजा दधिवाहन का स्वागत करने के लिए कौशाम्बी को विविध प्रकार से सजाया गया। उनके आने का समाचार सुन कर हर्षित होता हुआ शतानीक अपने सामन्त सरदारों के साथ अगवानी करने के लिए सामने गया। समीप आने पर दोनों अपनी अपनी सवारी से उतर गए। शतानीक दधिवाहन के पैरों में गिर कर अपने अपराधों के लिए बार बार क्षमा मांगने लगा। दधिवाहन ने उसे उठा कर गले से लगाया और सारी घटनाओं को कर्मों की विडम्बना बता कर उसे शान्त किया। दोनों शत्रुओं में चिर काल के लिए प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसमें शतानीक या दधिवाहन की विजय न थी किन्तु शत्रुता पर मित्रता की और पाप पर धर्म की विजय थी।

सती चन्दनबाला के पिता राजा दधिवाहन के आगमन की बात भी छिपी न रही। उनका दर्शन करने के लिए आई हुई जनता से सारा मार्ग भर गया। दधिवाहन और शतानीक को

एक साथ आते देख कर जनता जयनाद करने लगी।

महल में पहुँच कर शतानीक ने दधिवाहन को ऊँचे सिंहासन पर बैठाया। प्रसन्न होती हुई चन्दनबाला पिता से मिलने आई। पास आकर उसने विनय पूर्वक प्रणाम किया। चन्दनबाला को देखकर दधिवाहन गद्गद् हो उठा। कंठ रुँध जाने से वह एक भी शब्द न बोल सका। साथ में उसे लज्जा भी हुई कि जिस वसुमती को वह असहाय अवस्था में छोड़ कर चला गया था उसने अपने चरित्र बल से सब को सुधार दिया। धारिणी के प्राण त्याग और चन्दनबाला की दृढ़ता के सामने वह अपने को तुच्छ मानने लगा।

शतानीक को राज्य से घृणा हो गई थी, इस लिए उसने दधिवाहन से कहा— मैंने अब तक अन्यायपूर्ण राज्य किया है। न्याय से राज्य कैसे किया जाता है, यह मैं नहीं जानता, इस लिए आप चम्पा और कौशाम्बी दोनों राज्यों को सम्भालिए। मैं आपके नीचे रह कर प्रजा की सेवा करना सीखूँगा।

दधिवाहन ने उत्तर दिया— न्यायपूर्ण शासन करने के लिए हृदय पवित्र होना चाहिए। भावना के पवित्र होने पर ढंग अपने आप आ जाता है। मैं वृद्ध हो गया हूँ इस लिए दोनों राज्य आप ही सम्भालिए।

जिस राज्य के लिए घोर अत्याचार तथा महान् नरसंहार हुआ वही एक दूसरे पर इस प्रकार फैंका जा रहा था, जैसे दो खिलाड़ी परस्पर कन्दुक (गेंद) को फैंकते हैं। चन्दनबाला यह देख कर हर्षित हो रही थी कि धर्म की भावना किस प्रकार मनुष्य को राक्षस से देवता बना देती है।

अन्त में चन्दनबाला के कहने पर यह निर्णय हुआ कि दोनों को अपना अपना राज्य स्वयं सम्भालना चाहिए। दोनों राज्यों का भार किसी एक पर न पड़ना चाहिए।

बड़े समारोह के साथ दधिवाहन का राज्याभिषेक हुआ। दधिवाहन को दुबारा प्राप्त कर चम्पा की प्रजा को इतना हर्ष हुआ जितना बिछुड़े हुए पिता को पाकर पुत्र को होता है। कौशाम्बी और चम्पा दोनों राज्यों का स्थायी सम्बन्ध हो गया। किसी के हृदय में वैर और शत्रुता की भावना नहीं रही। सब जगह अखण्ड प्रेम और शान्ति स्थापित हो गई। सती चन्दनबाला ने चम्पा के उद्धार के साथ साथ सारे संसार के सामने प्रेम और सतीत्व का महान् आदर्श स्थापित कर दिया।

शतानीक और दधिवाहन में इतना प्रेम हो गया था कि उन दोनों में से कोई एक दूसरे से अलग होना नहीं चाहता था। चम्पा का अधिपति होने पर भी दधिवाहन प्रायः कौशाम्बी में ही रहने लगा। कुछ दिनों बाद उसे चन्दनबाला के विवाह की चिन्ता हुई। शतानीक और मृगावती ने भी चन्दनबाला का विवाहोत्सव देखने की इच्छा प्रकट की, फिर भी उससे बिना पूछे वे कुछ निश्चय नहीं कर सकते थे। एक दिन मृगावती ने दधिवाहन और शतानीक की उपस्थिति में चन्दनबाला के सामने विवाह का प्रस्ताव रक्खा। चन्दनबाला आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए पहले ही निश्चय कर चुकी थी। उसके मन में और भी उच्च भावनाएं थीं। इस लिए उसने मृगावती के प्रस्ताव का नम्रतापूर्वक ऐसा विरोध किया जिससे उन तीनों में से कोई कुछ न बोल सका। सब सुख साधनों के होते हुए यौवन के प्रारम्भ में ब्रह्मचर्य पालन की कठोर प्रतिज्ञा का उन तीनों पर ऐसा असर पड़ा कि उन्होंने भी यावज्जीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया।

राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए चम्पा में रहना आवश्यक समझ कर कुछ दिनों बाद दधिवाहन चम्पा चला गया किन्तु चन्दनबाला कौशाम्बी में ही ठहर गई। भगवान् महावीर को

केवलज्ञान होने पर वह उनके पास दीक्षा लेना चाहती थी।

कुछ दिनों बाद वह अवसर उपस्थित हो गया जिसके लिए चन्दनबाला प्रतीक्षा कर रही थी। श्रमण भगवान् महावीर को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। संसार का कल्याण करने के लिए वे ग्रामानुग्राम विचरने लगे। चन्दनबाला को भी यह समाचार मिला। उसे इतना आनन्द हुआ जितना प्यासे चातक को वर्षा के आगमन पर होता है। शतानीक और मृगावती से आज्ञा लेकर वह भगवान् के पास दीक्षा लेने के लिए चली। कौशाम्बी की जनता ने आँखों में आँसू भर कर उसे विदा दी। चन्दनबाला ने सभी को भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। कौशाम्बी से रवाना होकर वह भगवान् के समवसरण में पहुँच गई। देशना के अन्त में उसने अपनी इच्छा प्रकट की। सांसारिक दुःखों से छुटकारा देने के लिए भगवान् से प्रार्थना की।

भगवान् ने चन्दनबाला को दीक्षा दी। स्त्रियों में सर्व प्रथम दीक्षा लेने वाली चन्दनबाला थी। उसी से साध्वी रूप तीर्थ का प्रारम्भ हुआ था, इस लिए भगवान् ने उसे साध्वी संघ की नेत्री बनाया।

यथासमय मृगावती ने भी दीक्षा ले ली। वह चन्दनबाला की शिष्या बनी। धीरे धीरे काली, महाकाली, सुकाली आदि रानियों ने भी चन्दनबाला के पास संयम अङ्गीकार कर लिया। छत्तीस हजार साध्वियों के संघ की मुख्या बन कर वह लोक कल्याण के लिए ग्रामानुग्राम विचरने लगी। उसके उपदेश से अनेक भव्य प्राणियों ने प्रतिबोध प्राप्त किया तथा श्रावक या साधु के व्रतों को अंगीकार कर जन्म सफल किया। बहुत लोग मिथ्यात्व को छोड़ कर सत्य धर्म पर श्रद्धा करने लगे।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए कौशाम्बी पधारे। चन्दनबाला का भी अपनी शिष्याओं के साथ वहीं आगमन हुआ।

एक दिन मृगावती अपनी गुरुआनी सती चन्दनबाला की आज्ञा लेकर भगवान् के दर्शनार्थ गई। वापिस लौटते समय रास्ते में भीड़ होने के कारण उसे बहुत देर खड़ी रहना पड़ा। इतने में रात हो गई। मृगावती अँधेरा होजाने पर उपाश्रय में पहुँची। वहाँ आकर उसने चन्दनबाला को वन्दना की। प्रवर्तिनी होने के कारण उसे उपालम्भ देते हुए चन्दनबाला ने कहा– साध्वियों को सूर्यास्त के बाद उपाश्रय के बाहर न रहना चाहिए।

मृगावती अपना दोष स्वीकार करके उसके लिए पश्चात्ताप करने लगी। समय होने पर चन्दनबाला तथा दूसरी साध्वियाँ अपने अपने स्थान पर सो गईं, किन्तु मृगावती बैठी हुई पश्चात्ताप करती रही। धीरे धीरे उसके घाती कर्म नष्ट हो गए। उसे केवलज्ञान होगया।

अँधेरी रात थी। सब सतियाँ सोई हुई थीं। उसी समय मृगावती ने अपने ज्ञान द्वारा एक काला सांप देखा। चन्दनबाला का हाथ सांप के मार्ग में था। मृगावती ने उसे अलग कर दिया। हाथ के छूए जाने से चन्दनबाला की नींद खुल गई। पूछने पर मृगावती ने सांप की बात कह दी और निद्रा भंग करने के लिए क्षमा मांगी।

चन्दनबाला ने पूछा– अंधेरे में आपने साँप को कैसे देख लिया?

मृगावती ने उत्तर दिया– आपकी कृपा से मेरे दोष नष्ट हो गए हैं, इस लिए ज्ञान की ज्योति प्रकट हुई है।

चन्दनबाला– पूर्ण या अपूर्ण?

मृगावती– आपकी कृपा होने पर अपूर्णता कैसे रह सकती है?

चन्दनबाला– तब तो आपको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। बिना जाने मुझसे आपकी आशातना हुई है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

चन्दनबाला ने मृगावती को वन्दना की। केवली की आशातना के लिए वह पश्चात्ताप करने लगी। उसी समय उसके घाती कर्म नष्ट हो गए। वह भी केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ

और सर्वदर्शी बन गई।

केवलज्ञानी होनेके बाद सती चन्दनबाला और सती मृगावती विचर विचर कर जनता का कल्याण करने लगीं। सती चन्दनबाला की छत्तीस हजार साध्वियों में से एक हजार चार सौ साध्वियों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

आयुष्य पूरी होने पर एक हजार चार सौ साध्वियाँ शेष कर्मों को खपा कर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गईं।

चन्दनबाला को धारिणी का उपदेश

शान्ति-समर में कभी भूल कर धैर्य नहीं खोना होगा।
वज्र-प्रहार भले हो सिर पर किन्तु नहीं रोना होगा॥
अरि से बदला लेने का, मन बीज नहीं बोना होगा।
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा॥
देश-दाग को रुधिर-वारि से हर्षित हो धोना होगा।
देश-कार्य की भारी गठड़ी सिर पर रख ढोना होगा॥
आँखें लाल, भवें टेढ़ी कर क्रोध नहीं करना होगा।
बलि-वेदी पर तुझे हर्ष से चढ़ कर कट मरना होगा॥
नश्वर है नर-देह, मौत से कभी नहीं डरना होगा।
सत्य-मार्ग को छोड़ स्वार्थ-पथ पर पैर नहीं धरना होगा॥
होगी निश्चय जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा।
मातृभूमि के लिये, हर्ष से जीना या मरना होगा॥

(पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यानों में आए हुए सती चन्दनबाला चरित्र के आधार पर।)

राजीमती

रघुवंश तथा यदुवंश भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के उत्पत्तिक्षेत्र थे। उन्हीं का वर्णन करके संस्कृत कवियों ने अपनी लेखनी को अमर बनाया। उन्हीं दो गिरिशृङ्गों से भारतीय साहित्य गंगा के दिव्य स्रोत बहे।

जिस प्रकार रघुवंश के साथ अयोध्या नगरी का अमर सम्बन्ध है उसी प्रकार यदुवंश के साथ द्वारिका नगरी का। रघुवंश में राम सरीखे महापुरुष और सीता सरीखी महासतियाँ हुईं और यदुवंश का मस्तक भगवान् अरिष्टनेमि तथा महासती राजीमती सरीखी महान् आत्माओं के कारण गौरवोन्नत है।

उसी यदुवंश में अन्धकवृष्णि और भोजवृष्णि नाम के दो प्रतापी राजा हुए। अन्धकवृष्णि शौरिपुर में राज्य करते थे और भोजवृष्णि मथुरा में। महाराज अन्धकवृष्णि के समुद्रविजय, वसुदेव आदि दस पुत्र थे जिन्हें दशार्ह कहा जाता था। उनमें से सब से बड़े महाराज समुद्रविजय के पुत्र भगवान् अरिष्टनेमि हुए। इनकी माता का नाम शिवादेवी था। महाराज वसुदेव के पुत्र कृष्ण वासुदेव हुए। इनकी माता का नाम देवकी था। भोजवृष्णि के एक भाई मृत्तिकावती नगरी में राज्य करते थे। उनके पुत्र का नाम देवक था। देवकी इनकी पुत्री थी। भोजवृष्णि के पुत्र महाराज उग्रसेन हुए। उग्रसेन की रानी धारिणी के गर्भ से राजीमती का जन्म हुआ था। राजीमती रूप, गुण और शील सभी में अद्वितीय थी।

धीरे धीरे वह विवाह योग्य हुई। माता पिता को योग्य वर की चिन्ता हुई। वे चाहते थे, राजीमती जैसी सुशील तथा सुन्दर है उसके लिए वैसा ही वर खोजना चाहिए। इसके लिए उन्हें

नेमिकुमार के सिवाय कोई व्यक्ति उपयुक्त नहीं जान पड़ता था किन्तु नेमिकुमार विवाह ही न करना चाहते थे। बचपन से ही उन का मन संसार से विरक्त था। यादवों के भोगविलास उन्हें अच्छे न लगते थे। हिंसा पूर्ण कार्यों से स्वाभाविक अरुचि थी। इस कारण महाराज उग्रसेन को चिन्ता हो रही थी कि कहीं राजीमती का विवाह उसके अननुरूप वर से न करना पड़े।

महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवा देवी भी नेमिकुमार का विवाहोत्सव देखने के लिये उत्कण्ठित थे किन्तु नेमिकुमार की स्वीकृति के बिना कुछ न कर सकते थे। एक दिन उन्होंने नेमिकुमार से कहा— वत्स ! हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि आप तीर्थङ्कर होने वाले हैं। तीर्थङ्करों का जन्म जगत्कल्याण के लिये ही होता है। यह हर्ष की बात है कि आप के द्वारा मोह में फँसे हुए भव्य प्राणियों का उद्धार होगा। किन्तु आप से पहले भी बहुत से तीर्थङ्कर हो चुके हैं, उन्होंने विवाह किया था, राज्य किया था और फिर संसार त्याग कर मोक्ष मार्ग को अपनाया था। हम यह नहीं चाहते कि आप सारी उम्र गृहस्थ जीवन में फँसे रहें। हमारे चाहने से ऐसा हो भी नहीं सकता क्योंकि आप तीर्थङ्कर हैं। भव्य प्राणियों का उपकार करने के लिए उनके शुभ कर्मों से प्रेरित होकर आप अवश्य संसार का त्याग करेंगे। किन्तु यह कार्य आप विवाह के बाद भी कर सकते हैं। हमारी अन्तिम अभिलाषा है कि हमें आपका विवाहोत्सव देखने का अवसर प्राप्त हो। क्या माता पिता के इस सुख स्वप्न को आप पूरा न करेंगे ?

कुमार नेमिनाथ अपनी स्वाभाविक मुस्कान के साथ सिर नीचा किए माता पिता की बातें सुनते रहे। वे मन में सोच रहे थे कि संसार में कितना अज्ञान फैला हुआ है। भोले प्राणी अपनी सन्तान को विवाह बन्धन में डालने के लिए कितने उत्सुक रहते

हैं? उसे ब्रह्मचर्य के उच्च आदर्श से गिराने में कितना सुख मानते हैं? इनकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य जीवन जीवन ही नहीं है। संसार में समझदार और बुद्धिमान् कहे जाने वाले मनुष्य भी ऐसे विचारों से घिरे हुए हैं। मेरे लिए इस विचारधारा में बह जाना श्रेयस्कर नहीं है। मैं दुनिया के सामने त्याग और ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श रखना चाहता हूँ किन्तु इस समय माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना या मान लेना दोनों मार्ग ठीक नहीं हैं। यह सोच कर उन्होंने बात को टालने के अभिप्राय से कहा— आप लोग धैर्य रक्खें। अभी विवाह का अवसर नहीं है। अवसर आने पर देखा जाएगा। समुद्रविजय और शिवादेवी इसके आगे कुछ न बोल सके। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन कुमार नेमिनाथ दूल्हा बनेंगे। सिर पर मौर बाँध कर विवाह करने जावेंगे।

समुद्रविजय और शिवादेवी कुमार नेमिनाथ से विवाह की स्वीकृति लेने का प्रयत्न कई बार कर चुके थे किन्तु कुमार सदा टालमटोल कर दिया करते थे। अन्त में उन्होंने श्रीकृष्ण से सहायता लेने की बात सोची। एक दिन उन्हें बुला कर कहा— वत्स! तुम्हारे छोटे भाई अरिष्टनेमि पूर्ण युवक हो गए हैं। वे अभी तक अविवाहित ही हैं। हमने उन्हें कई बार समझाया किन्तु वे नहीं मानते। तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव का भाई अविवाहित रहे यह शोभा नहीं देता। इस विषय में आप भी कुछ प्रयत्न कीजिए।

श्रीकृष्ण ने प्रयत्न करने का वचन देकर समुद्रविजय और शिवादेवी को सान्त्वना दी। इसके बाद वे अपने महल में आकर कोई उपाय सोचने लगे। उन्हें विचार में पड़ा देख कर सत्यभामा ने चिन्ता का कारण पूछा। विवाह सम्बन्धी बातों में स्त्रियाँ विशेष चतुर होती हैं, यह सोच कर श्रीकृष्ण ने सारी बात कह दी।

उन दिनों वसन्त ऋतु थी। वृक्ष नए फूल और पत्तों से लदे

थे। सुगन्धित समीर युवक हृदयों में मादकता का सञ्चार कर रहा था। सत्यभामा ने वसन्तोत्सव मनाकर उसी में श्रीनेमिकुमार से विवाह की स्वीकृति लेने का निश्चय किया।

रैवत गिरि अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए अनुपम है। उसी पर वसन्तोत्सव मनाने का निश्चय किया गया। धूमधाम से तैयारियाँ शुरू हुईं। श्रीकृष्ण, बलदेव आदि सभी यादव अपनी पत्नियों के साथ रैवत गिरि पर चले। नेमिकुमार को भी श्रीकृष्ण ने आग्रहपूर्वक अपने साथ ले लिया। मार्ग में सत्यभामा वगैरह कृष्ण की रानियाँ नेमिकुमार से विविध प्रकार से मजाक करके उन्हें सांसारिक विषयों की ओर खींचने का निष्फल प्रयत्न कर रही थीं। नेमिकुमार के हृदय पर उन बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ रहा था। वे मन ही मन मोह की विडम्बना पर विचार कर रहे थे। रैवत गिरि पर पहुँच कर सभी स्त्री पुरुष वसन्तोत्सव मनाने लगे। विविध प्रकार की क्रीड़ा करती हुई कृष्ण की रानियाँ नेमिकुमार के सामने कामोत्तेजक चेष्टाएं करने लगीं। बीच बीच में वे पूछती जाती थीं—देवर जी! हमें आशा है अगले वसन्तोत्सव में आप भी पत्नीसहित होंगे। भगवान् नेमिनाथ उनकी चेष्टाओं और उक्तियों से विकृत होने वाले न थे। मोह में फँसे हुए प्राणियों की बातों पर मन ही मन विचार करते हुए उन्हें हँसी आ गई। कृष्ण की रानियों ने समझा, नेमिकुमार विवाह के लिए तैयार हो गए हैं। उसी समय यह प्रसिद्ध कर दिया गया कि नेमिकुमार ने विवाह करना मन्जूर कर लिया है। वसन्तोत्सव पूरा हुआ। सभी यादव लौट आए। श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार द्वारा विवाह की स्वीकृति का वृत्तान्त समुद्र विजय तथा शिवादेवी से कहा। उन्हें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कृष्ण से फिर कहा— नेमिकुमार के लिए योग्य कन्या को ढूँढना भी आप ही का काम है, इसे भी आप ही पूरा कीजिए।

हम तो नेमिकुमार के विवाह का सारा भार आप पर डाल चुके हैं।

श्रीकृष्ण ने इस विषय में भी सत्यभामा से पूछा। राजीमती सत्यभामा की बहिन थी। उसकी दृष्टि में नेमिकुमार के लिए राजीमती के सिवाय कोई कन्या उपयुक्त न थी। राजीमती के लिए भी नेमिकुमार के सिवाय कोई योग्य वर न था। इसलिए सत्यभामा ने राजीमती के लिए प्रस्ताव रक्खा। श्रीकृष्ण, समुद्रविजय और शिवादेवी सभी को यह बात बहुत पसन्द आई।

राजीमती को माँगने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण महाराजा उग्रसेन के पास गए। उन्होंने भी श्रीकृष्ण का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। महारानी धारिणी तथा राजीमती को भी इससे बहुत प्रसन्नता हुई। विवाह के लिये श्रावण शुक्ला षष्ठी का दिन निश्चित हुआ।

श्रीकृष्ण के लौटते ही महाराज समुद्रविजय ने विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। सभी यादवों को आमन्त्रण भेजे गए। द्वारिका नगरी को सजाया गया। जगह जगह बाजे बजने लगे। मंगल गीत गाए जाने लगे। महाराज उग्रसेन यादवों के विशाल परिवार और उनकी ऋद्धि से परिचित थे। बरात का सत्कार करने के लिए उन्होंने भी विशाल आयोजन प्रारम्भ किया।

यादवों में उन दिनों मद्य और मांस का बहुत प्रचार था। बिना मांस के भोजन अधूरा समझा जाता था। उनका स्वागत करने के लिए मांस आवश्यक वस्तु थी। बरातियों के भोजन के लिए महाराज उग्रसेन ने भी अनेक पशु पक्षी एकत्रित किए। उन्हें विशाल बाड़े तथा पिंजरों में बन्द करके खिला पिला कर हृष्ट पुष्ट किया जाने लगा। मारे जाने वाले पशुओं का बाड़ा उसी रास्ते पर था जिधर से बरात आने वाली थी।

धीरे धीरे बरात के प्रस्थान का दिन आ गया। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की चतुरंगिणी सेना सजाई गई। यादवगण बहु

मूल्य वस्त्राभूषण पहिन कर अपने अपने वाहन पर सवार हुए। प्रस्थान समय के मंगलवाद्य बजने लगे। गायक मंगल गीत गाने लगे। भगवान् अरिष्टनेमि को दूल्हे के रूप में सजाया जाने लगा। उन्हें विविध प्रकार की औषधियों तथा दूसरे पदार्थों से युक्त सुगन्धित पानी से स्नान कराया गया। उज्ज्वल वेश और आभूषण पहनाए गए। वर के वेश में नेमिकुमार कामदेव के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी मालूम पड़ने लगे। उन्हें देख कर समुद्रविजय और शिवादेवी के हर्ष का पार न था।

नेमिकुमार के बैठने के लिए श्रीकृष्ण का प्रधान गन्ध हस्ती रत्नजटित आभूषणों से सजाया गया। अनेक मंगलोपचारों के साथ वे हाथी पर विराजे। उन पर छत्र सुशोभित हो गया। चँवर दुलाए जाने लगे।

बरात में सब से आगे चतुरंगिणी सेना बाजा बजाते हुए चल रही थी। उसके पीछे मंगल गायक और बन्दीजनों का समूह था। इसके बाद हाथी और घोड़ों पर प्रमुख अतिथि अर्थात् पाहुने सवार थे। उनके पीछे कुमार नेमिनाथ का हाथी था। दोनों ओर घोड़ों पर सवार अंगरक्षक थे। सब से पीछे समुद्रविजय, वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि यादव नरेश और सेना थी। शुभमुहूर्त में मंगलाचार के बाद बरात ने प्रस्थान किया। झूमते हुए मतवाले हाथियों, हिनहिनाते हुए घोड़ों, गूँजते हुए नगारों और फहराते हुए झण्डों के साथ पृथ्वी को कम्पित करती हुई बरात मथुरा की ओर रवाना हुई।

जब बरात मथुरा के पास पहुँच गई, महाराज उग्रसेन अपने परिवार तथा सेना के साथ अगवानी (सामेला) करने के लिए आए।

राजीमती के हृदय में अपार हर्ष हो रहा था। सखियाँ उसका शृङ्गार कर रही थीं। वे उससे विविध प्रकार का मजाक कर रही थीं। इतने में राजीमती की दाहिनी आँख फड़कने लगी। साथ में

दूसरे दाहिने अङ्ग भी फड़कने शुरू हुए। मनुष्य को जितना अधिक हर्ष होता है वह विघ्नों के लिए उतना ही अधिक शङ्काशील रहता है। राजीमती के हृदय में भी किसी अज्ञात भय ने स्थान कर लिया। उसने अङ्ग फड़कने की बात सखियों से कही। सखियों ने कई प्रकार से समझाया किन्तु राजीमती के हृदय से सन्देह दूर न हुआ।

धन, शारीरिक बल या बुद्धि मात्र से कोई महापुरुष नहीं बनता। वास्तविक बड़प्पन का सम्बन्ध आत्मा से है। जिस व्यक्ति की आत्मा जितनी उन्नत तथा बलवान् है वह उतना ही बड़ा है। दूसरे के दुःखों को अपना दुःख समझना, प्राणी मात्र से मित्रता रखना, हृदय में सरलता तथा सहृदयता का वास होना महापुरुषों के लक्षण हैं। महापुरुष सांसारिक भोगों में नहीं फँसते।

भगवान् अरिष्टनेमि की बरात तोरणद्वार की ओर आ रही थी। धीरे धीरे उस बाड़े के सामने पहुँच गई जिसमें मारे जाने वाले पशु पक्षी बँधे थे। बन्धन में पड़ने के कारण वे विविध प्रकार से करुण क्रन्दन कर रहे थे। सारी बरात निकल गई किन्तु किसी का ध्यान उन दीन पशुओं की ओर न गया। सांसारिक भोगों में अन्धे बने हुए व्यक्ति दूसरे के सुख दुःख को नहीं देखते। अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए वे सारी दुनिया को भूल जाते हैं।

क्रमशः कुमार नेमिनाथ का हाथी बाड़े के सामने आया। पशुओं का विलाप सुन कर उनका हृदय करुणा से भर गया।

भगवान् ने सारथी से पूछा— इन दीन पशुओं को बन्धन में क्यों डाला गया है ?

सारथी ने उत्तर दिया — प्रभो! ये सब महाराज उग्रसेन ने आप के विवाह में भोज देने के लिए इकट्ठे किए हैं। यादवों का भोजन मांस के बिना पूरा नहीं होता।

भगवान् ने आश्चर्यचकित होते हुए कहा— मेरे विवाह में मांस

भोजन! जिह्वा की क्षणिक तृप्ति के लिए इतनी बड़ी हत्या! मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितना अन्धा हो जाता है? अपनी क्षणिक लालसा के लिए हजारों प्राणियों का जीवन लेते हुए भी नहीं हिचकता। भला इन दीन अनाथ पशुओं ने किसी का क्या बिगाड़ा है? फिर इन्हें बन्धन में क्यों डाला जाय? इनके प्राण क्यों लिए जायँ? क्या मनुष्य को अपनी इच्छातृप्ति के लिए दूसरों के प्राण लेने का अधिकार है? क्या यह न्याय है कि सबल निर्बल के प्राण ले ले? क्या यह मानवता है? नहीं, यह मानवता के नाम पर अत्याचार है। भयङ्कर अन्याय है। मेरा जीवन संसार में न्याय और सत्य की स्थापना के लिए है। फिर मैं अपने ही निमित्त से होने वाले इस अन्याय का अनुमोदन कैसे कर सकता हूँ? मैं अहिंसाधर्म की प्ररूपणा करने वाला हूँ, फिर हिंसा को श्रेयस्कर कैसे मान सकता हूँ?

भगवान् की इच्छा देख कर सारथी ने सभी प्राणियों को बन्धन मुक्त कर दिया। आनन्दित होते हुए पक्षी आकाश में उड़ गए। पशु वन की ओर भागे। भगवान् द्वारा अभयदान मिलने पर उन के हर्ष का पारावार न रहा।

भगवान् ने प्रसन्न होकर अपने बहुमूल्य आभूषण सारथी को पारितोषिक में दे दिए और कहा—सखे! हाथी को वापिस ले चलो। जिसके लिए इस प्रकार का महारम्भ हो ऐसा विवाह मुझे पसन्द नहीं है। सारथी ने हाथी को वापिस मोड़ लिया। बरात बिना वर की हो गई। चारों ओर खलबली मच गई।

महल की खिड़की से राजीमती यह दृश्य देख रही थी। उसके हृदय की आशङ्का उत्तरोत्तर तीव्र हो रही थी। नेमिकुमार के हाथी को वापिस होते देख कर वह बेहोश होकर गिर पड़ी। दासियाँ और सखियाँ घबरा गईं।

नेमिकुमार का हाथी वापिस जा रहा था। कृष्ण वासुदेव महाराज समुद्रविजय तथा यदुवंश के सभी बड़े बड़े व्यक्ति उन्हें समझाने आए किन्तु कुमार नेमिनाथ अपने निश्चय पर अटल थे। वे सांसारिक भोग विलासों को छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। उन्होंने मार्मिक शब्दों में कहना शुरू किया—

मुझे राजीमती से द्वेष नहीं है। जो व्यक्ति संसार के सभी प्राणियों को सुखी बनाना चाहता है वह एक राजीमती को दुःख में कैसे डाल सकता है। किन्तु मोह में पड़े हुए संसार के भोले प्राणी यह नहीं समझते कि वास्तविक सुख कहाँ है। क्षणिक भोगों के दास बन कर इन्द्रियविषयों के गुलाम होकर वे तुच्छ वासनाओं की तृप्ति में ही सुख मानते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि ये ही इन्द्रिय विषय उनके लिए बन्धन स्वरूप हैं। परिणाम में बहुत दुःख देने वाले हैं।

संसार में दो प्रकार की वस्तुएं हैं—श्रेय और प्रेय। जो वस्तुएं इन्द्रियों और मन को प्रिय लगती हैं किन्तु परिणाम में दुःख देने वाली हैं वे प्रेय कही जाती हैं। जिनसे आत्मा का कल्याण होता है, इन्द्रियां और मन बाह्य विषयों की ओर जाने से रुक जाते हैं उन्हें श्रेय कहा जाता है। इन्द्रिय और मन के दास बने हुए भोले प्राणी प्रेय वस्तु को अपनाते हैं और अनन्त संसार में रुलते हैं। इस के विपरीत विवेकी पुरुष श्रेय वस्तु को अपनाते हैं और उसके द्वारा मोक्ष के नित्य सुख को प्राप्त करते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि की बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक हजार यादव संसार को बन्धन समझ कर उन्हीं के साथ दीक्षा लेने को तैयार होगए। श्रीकृष्ण और समुद्रविजय वगैरह प्रमुख यादव भी निरुत्तर होगए और उन्हें रोकने का प्रयत्न छोड़ कर अलग होगए। भगवान् नेमिनाथ सारी बरात को छोड़ कर अपने महल की ओर रवाना हुए।

भगवान् के जाते ही बरातियों की सारी उमंगें हवा हो गई। सभी के चेहरे पर उदासी छा गई। चाँद के छिप जाने पर जो दशा रात्रि की होती है वही दशा नेमिनाथ के चले जाने पर बरात की हुई। महाराज उग्रसेन की दशा और भी विचित्र हो रही थी। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था कि इस समय क्या करना चाहिए।

उस समय राजीमती के हृदय की दशा अवर्णनीय थी। नेमिकुमार के हाथी को अपने महल की ओर आते देख कर उसने सोचा था— मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ! त्रिलोकपूज्य भगवान् स्वयं मुझे वरने के लिए आरहे हैं। मैं यादवों की कुलवधू बनूँगी। महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी मेरे श्वसुर और सास होंगे। मुझ से बढ़ कर सुखी संसार में कौन है?

राजीमती अपने भावी सुखों की कल्पनाओं से मन ही मन खुश होरही थी, इतने में उसने नेमिकुमार को वापिस लौटते देखा। वह इस आघात को न सह सकी और मूर्छित होकर गिर पड़ी। चेतना आते ही सारा दुःख बाहर उमड़ आया। वह अपना सर्वस्व नेमिकुमार के चरणों में अर्पित कर चुकी थी, उन्हें अपना आराध्य देव मान चुकी थी। जीवन नैया की पतवार उनके हाथों में सौंप चुकी थी। उनके विमुख होने पर वह अपने को सूनी सी, निराधार सी, नाविक रहित नौका सी मानने लगी। जिस प्रकार सूर्य और दिन का सतत सम्बन्ध है, राजीमती उसी प्रकार नेमिकुमार और अपने सम्बन्ध को मान चुकी थी। सूर्य के बिना दिन के समान नेमिकुमार के बिना वह अपना कोई अस्तित्व ही न समझती थी।

सखियाँ कहने लगीं—अभी कौनसा विवाह हो गया है? उन से भी अच्छा कोई दूसरा वर मिल जाएगा।

राजीमती ने उत्तर दिया— विवाह क्या होता है? क्या अग्नि प्रदक्षिणा देने से ही विवाह होता है? मेरा विवाह तो उसी दिन

हो चुका जिस दिन मैंने अपने हृदय में नेमिकुमार को पति मान लिया। उस दिन से मैं उनकी हो चुकी। उनके सिवाय सभी पुरुष मेरे लिए पिता और भाई के समान हैं। कुमार स्वयं भी मुझे अपनी पत्नी बनाना स्वीकार करके ही यहाँ आए थे। मुझे इस बात का गौरव है कि उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाने के योग्य समझा। संसार की सारी स्त्रियों को छोड़ कर मुझे ही यह सन्मान दिया।

यह भी मेरे लिए हर्ष की बात है कि वे संसार के प्राणियों को अभय दान देने के लिए ही वापिस गए हैं। अगर वे मुझे छोड़ कर किसी दूसरी कन्या से विवाह करने जाते तो मेरे लिए यह अपमान की बात होती किन्तु उन्होंने अपने उस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवाह बन्धन में पड़ना उचित नहीं समझा। यह तो मेरे लिए अभिमान की बात है कि मेरे पति संसार का कल्याण करने के लिए जा रहे हैं। दुःख केवल इतना ही है कि वे मुझे बिना दर्शन दिए चले गए। अगर विवाह हो जाने के बाद वे मुझे भी अपने साथ ले चलते और मुक्ति के मार्ग में अग्रसर होते हुए मुझे भी अपने साथ रखते तो कितना अच्छा होता। क्या मैं उनके पथ में बाधा डालती? किन्तु नेमिकुमार एक बार मुझे अपना चुके हैं। अपने चरणों में शरण दे चुके हैं। महापुरुष जिसे एक बार शरण दे देते हैं फिर उसे नहीं छोड़ते। नेमिकुमार भी मुझे कभी नहीं छोड़ सकते। संसार के प्राणियों को दुःख से छुड़ाने के लिए उन्होंने सभी भौतिक सुखों को छोड़ा है। ऐसी दशा में वे मुझे दुःख में कैसे छोड़ सकते हैं? मेरा अवश्य उद्धार करेंगे।

राजीमती में स्त्रीहृदय की कोमलता, महासती की पवित्रता और महापुरुषों सी वीरता का अपूर्व सम्मिश्रण था। उसकी विचार धारा कोमलता के साथ उठ कर दृढ़ता के रूप में परिणत हो गई। उसे पक्का विश्वास हो गया कि नेमिकुमार अवश्य आएंगे और

मेरा उद्धार करेंगे। भगवान् के गुणगान और उन्हीं के स्मरण में लीन रहती हुई वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी।

भगवान् अरिष्टनेमि के छोटे भाई का नाम रथनेमि था। एक ही माता पिता के पुत्र होने पर भी उन दोनों के स्वभाव में महान् अन्तर था। नेमिनाथ जिन वस्तुओं को तुच्छ समझते थे रथनेमि उन्हीं के लिए तरसते थे। इन्द्रियों को तृप्त करना, सांसारिक विषयों का सेवन करना तथा कामभोगों को भोगना ही वे अपने जीवन का ध्येय मानते थे।

उन्होंने राजीमती के सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा सुन रक्खी थी। वे चाहते थे कि राजीमती उन्हें ही प्राप्त हो किन्तु अरिष्टनेमि के साथ उसके विवाह का निश्चय हो जाने पर मन मसोस कर रह गए। अरिष्टनेमि विवाह नहीं करेंगे इस निश्चय को जान कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके हृदय में फिर आशा का संचार हुआ और राजीमती को प्राप्त करने का उपाय सोचने लगे।

इस कार्य के लिए रथनेमि ने एक दूती को राजीमती के पास भेजा। पुरस्कार के लोभ में पड़ कर दूती राजीमती के पास गई। एकान्त अवसर देख कर उसने रथनेमि की इच्छा राजीमती के सामने प्रकट की और विविध प्रकार से उसे सांसारिक सुखों की ओर आकृष्ट करके यह सम्बन्ध स्वीकार करने का आग्रह किया। उसने रथनेमि के सौन्दर्य, वीरता, रसिकता आदि गुणों की प्रशंसा की। विषयसुखों की रमणीयता का वर्णन किया और राजीमती से फिर कहा—आपको सब प्रकार के सुख प्राप्त हैं। शारीरिक सम्पत्ति है, लक्ष्मी है, प्रभुता है। रथनेमि सरीखे सुन्दर और सहृदय राजकुमार आपके दास बनने को तैयार हैं। मानव जीवन और सब प्रकार के सांसारिक सुखों को प्राप्त करके उन्हें व्यर्थ जाने देना बुद्धिमत्ता नहीं है। अतःइस प्रस्ताव को स्वीकार कीजिए और अनु-

मति देकर अपने और कुमार रथनेमि के जीवन को सुखमय बनाइए।

राजीमती को दूती की बात सुन कर आश्चर्य हुआ। दोनों भाइयों में इतना अन्तर देख कर वह चकित रह गई।

साधारण स्त्री होती तो दूती का प्रस्ताव मञ्जूर कर लेती या अनिच्छा होने पर अपना क्रोध दूती पर उतारती। उसे डाटती, फटकारती, दण्ड देने तक तैयार हो जाती। किन्तु राजीमती सती होने के साथ साथ बुद्धिमती भी थी। उसकी दृष्टि में पापी पर क्रुद्ध होने की अपेक्षा प्रयत्नपूर्वक उसे सन्मार्ग में लाना श्रेयस्कर था। उसने सोचा- दूती को फटकारने से सम्भव है बात बढ़ जाय और उससे रथनेमि के सन्मान में बट्टा लगे। रथनेमि कुलीन पुरुष हैं। इस समय कामान्ध होने पर भी समझाने से सुमार्ग पर लाए जा सकते हैं। यह सोच कर उसने दूती से कहा—रथनेमि के इस प्रस्ताव का उत्तर मैं उन्हें ही दूँगी। इस लिए तुम जाओ और उन्हें ही भेज दो। साथ मे कह देना कि वे अपनी पसन्द के अनुसार किसी पेय वस्तु को लेते आवें।

यद्यपि राजीमती ने यह उत्तर दूसरे अभिप्राय से दिया था, किन्तु दूती ने उसे अपने प्रस्ताव की स्वीकृति ही समझा। वह प्रसन्न होती हुई रथनेमि के पास गई और सारी बातें सुना दीं। रथनेमि ने भी उसे प्रस्ताव की स्वीकृति ही समझा।

रथनेमि ने सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहने। बड़ी उमङ्गों के साथ पेय वस्तु तैयार कराई। रत्न खचित स्वर्ण थाल में कटोरा रख कर बहुमूल्य रेशमी वस्त्र से उसे ढक दिया। एक सेवक को साथ लेकर राजीमती के महल में पहुँचा। भावी सुखों की आशा में वह फूला न समाता था।

राजीमती ने रथनेमि का स्वागत किया। वह कहने लगी—आप का दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूती ने आपकी जैसी

प्रशंसा की थी वे सभी गुण आप में मालूम पड़ रहे हैं। जब से उसने विवाह का प्रस्ताव रक्खा मैं आपकी प्रतीक्षा में थी।

राजीमती की बातें सुनते समय रथनेमि के हृदय में उत्तरोत्तर अधिक आशा का संचार हो रहा था। वह समझ रहा था राजीमती ने मुझे स्वीकार कर लिया है। उसने उत्तर दिया—

राजकुमारी! मैंने आपके सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा बहुत दिनों से सुन रक्खी थी। बहुत दिनों से मैंने आपको अपने हृदय की अधीश्वरी मान रक्खा था, किन्तु भाई के साथ आपके सम्बन्ध की बात सुन कर चुप होना पड़ा। मालूम पड़ता है मेरा भाग्य बहुत तेज है इसी लिए नेमिकुमार ने इस सम्बन्ध को नामञ्जूर कर दिया। निश्चय होने पर भी मैं एक बार आपके मुँह से स्वीकृति के शब्द सुनना चाहता हूँ, फिर विवाह में देर न होगी।

राजीमती मन ही मन सोच रही थी— कामान्ध व्यक्ति अपने सारे विवेक को खो बैठता है। मेरे बाह्य रूप पर आसक्त होकर ये अपने भाई के नाते को भी भूल रहे हैं। भगवान् के त्याग को ये अपना सौभाग्य मान रहे हैं। मोह की विडम्बना विचित्र है। इस के वश में पड़ कर मनुष्य भयङ्कर से भयङ्कर पाप करते हुए नहीं हिचकता। भगवान् के साथ मेरा विवाह हो जाने पर भी इनके हृदय से यह दुर्भावना दूर न होती और उसे पूर्ण करने के लिये ये किसी भी पाप से नहीं हिचकते।

राजीमती के कहने पर रथनेमि ने पेय वस्तु का कटोरा उसके सामने रख दिया और कहा— आपने बहुत ही तुच्छ वस्तु मँगवाई। मैं आपके लिये बड़ी से बड़ी वस्तु लाने के लिये तैयार हूँ।

राजीमती उस कटोरे को उठा कर पी गई साथ में पहले से पास रक्खी हुई उस दवा को भी खा गई जिसका प्रभाव तत्काल वमन था। कटोरे को पीते देख रथनेमि को पक्का विश्वास हो गया कि

राजीमती ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। वे मन ही मन बहुत खुश हो रहे थे। इतने में उन्होंने देखा कि राजीमती उसी कटोरे में वमन कर रही है। रथनेमि काँप उठे और आशङ्का करने लगे कि कहीं कटोरे में ऐसी वस्तु तो नहीं मिल गई जो हानिकारक हो।

वे इस प्रकार सोच ही रहे थे कि राजीमती ने वमन से भरा हुआ कटोरा उसके सामने किया और कहा—राजकुमार! लीजिए, इसे पी लीजिए।

वमन के कटोरे को देख कर रथनेमि पीछे हट गए। आँखें क्रोध से लाल हो गईं। ओठ फड़कने लगे। गरजते हुए कहने लगे—राजीमती! तुम्हें अपने रूप पर इतना घमण्ड है? किसी भद्र पुरुष को बुला कर तुम उसका अपमान करती हो? क्या मुझे कुत्ता या कौआ समझ रखा है जो वमन की हुई वस्तु पिलाना चाहती हो?

राजीमती ने उपदेश देने की इच्छा से कुमार को शान्त करते हुए कहा— राजकुमार! शान्ति रखिए। मैं आपके प्रेम की परीक्षा करना चाहती हूँ।

रथनेमि—क्या परीक्षा का यही उपाय है?

राजीमती—हाँ! यही उपाय है। यदि आप इसे पी जाते तो मैं समझती कि आप मुझे स्वीकार कर सकेंगे।

रथनेमि— क्या मैं वमा हुआ पदार्थ पी जाऊँ?

राजीमती—वमा हुआ पदार्थ है तो क्या हुआ? है तो वही जो आप लाए थे और जो आपको अत्यधिक प्रिय है। इसके रूप, रस या रंग में कोई फरक नहीं पड़ा है। केवल एक बार मेरे पेट तक जा कर निकल आया है।

रथनेमि— इससे क्या, है तो वमन ही?

राजीमती—मेरे साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाले के लिए वमन पीना कठिन नहीं है।

रथनेमि– क्यों ?

राजीमती– जिस प्रकार यह पदार्थ मेरे द्वारा त्यागा हुआ है उसी प्रकार मैं आप के भाई द्वारा त्यागी हुई हूँ। जैसे मैं आप को प्रिय हूँ उसी प्रकार यह पदार्थ भी आप को बहुत प्रिय है। दोनों के समान होने पर भी इसे पीने वाले को आप कुत्ते या कौए के समान समझते हैं और मुझे अपनाते समय यह विचार नहीं करते।

राजीमती की युक्तिपूर्ण बातें सुन कर रथनेमि का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। उसे मन ही मन पश्चात्ताप होने लगा।

राजीमती फिर कहने लगी – यादवकुमार! मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव भेजते समय आपने यह विचार नहीं किया कि मैं आप के बड़े भाई की परित्यक्ता पत्नी हूँ। मोहवश आप मेरे साथ विवाह करने को तैयार हो गए। आप के बड़े भाई मेरा त्याग कर के चले गए इसे आपने अपना सौभाग्य माना। आप भी उन्हीं माता पिता के पुत्र हैं जिन के भगवान् स्वयं हैं, फिर सोचिए मोह ने आप को कितना नीचे गिरा दिया।

रथनेमि लज्जा से पृथ्वी में गड़े जा रहे थे। वे कहने लगे– राजकुमारी! मुझे अपने कार्य के लिए बहुत पश्चात्ताप हो रहा है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आपने उपदेश देकर मेरी आँखें खोल दीं।

रथनेमि चुपचाप राजीमती के महल से चले आए। उन के हृदय में लज्जा और ग्लानि थी। सांसारिक विषयों से उन्हें विरक्ति हो गई थी। उन्होंने सांसारिक बन्धनों को छोड़ने का निश्चय कर लिया।

राजीमती का भगवान् अरिष्टनेमि के साथ लौकिक दृष्टि से विवाह नहीं हुआ था। अगर वह चाहती तो रथनेमि या किसी भी योग्य पुरुष से विवाह कर सकती थी। इस के लिए उसे लोक में निन्दा का पात्र न बनना पड़ता फिर भी उसने किसी दूसरे पुरुष से विवाह नहीं किया। जीवन पर्यन्त कुमारी रहना स्वीकार कर

लिया, उसे ही अपना पति माना।

भगवान् अरिष्टनेमि तोरण द्वार से लौट कर अपने महल में चले आए। उसी समय तीर्थङ्करों की मर्यादा के अनुसार लोकान्तिक देव उन्हे चेताने के लिए आए और सेवा में उपस्थित होकर कहने लगे—प्रभो! संसार में पाप बहुत बढ़ गया है। लोग विषय वासनाओं में लिप्त रहने लगे हैं। बलवान् प्राणी दुर्बलों को सता रहे हैं। जनता को हिंसा, स्वार्थ, विषयवासना आदि पाप प्रिय मालूम पड़ने लगे हैं। इस लिए प्रभो! धर्मतीर्थ की प्रवर्तना कीजिये जिससे प्राणियों को सच्चे सुख का मार्ग प्राप्त हो और पृथ्वी पर पाप का भार हल्का हो। भव्य प्राणी अपने कल्याण के लिए आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना सुन कर भगवान् ने वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया।

रथनेमि को भी संसार से विरक्ति हो गई थी। भगवान् के साथ दीक्षा लेने की इच्छा से वे भगवान के दीक्षादिवस की प्रतीक्षा करने लगे। दूसरे यादव भी जो भगवान् के उपदेश से प्रभावित हो कर संसार छोड़ने को तैयार हो गए थे वे भी उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

महाराजा उग्रसेन को जब यह मालूम पड़ा कि अरिष्टनेमि वार्षिक दान दे रहे हैं और उसके अन्त में दीक्षा ले लेंगे तो उन्होंने राजीमती का विवाह किसी दूसरे पुरुष से करने का विचार किया। इस के लिए राजीमती की स्वीकृति लेना आवश्यक था।

इस लिए महाराज उग्रसेन रानी के साथ राजीमती के पास गए। वे कहने लगे— बेटी! अब तुम्हें अरिष्टनेमि का ध्यान हृदय से निकाल देना चाहिए। उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है। यह अच्छा ही हुआ कि विवाह होने के पहले ही वे वापिस चले

गए। विवाह के बाद तुम्हें त्याग देते या दीक्षा ले लेते तो सारे जीवन दुःख उठाना पड़ता। अब हम तुम्हारा विवाह किसी दूसरे राजकुमार से करना चाहते हैं। इस में नीति, धर्म या समाज की ओर से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। तुम्हारी क्या इच्छा है?

राजीमती– पिताजी! मेरा विवाह तो हो चुका है। हृदय से किसी को पति रूप में या पत्नीरूप में स्वीकार कर लेना ही विवाह है। उसके लिए बाह्य दिखावे की आवश्यकता नहीं है। बाह्य क्रियाएं केवल लोगों को दिखाने के लिए होती हैं। असली विवाह हृदय का सम्बन्ध है। मैं इस विवाह को कर चुकी हूँ। आर्य कन्या को आप दुबारा विवाह करने के लिये क्यों कह रहे हैं?

माता– बेटी! हम तुम्हें दूसरे विवाह के लिए नहीं कह रहे हैं। विवाह एक लौकिक प्रथा है और जब तक वह पूरी नहीं हो जाती, कन्या और वर दोनों अविवाहित माने जाते हैं, दुनिया उन्हें अविवाहित ही कहती है, इसी लिए तुम अविवाहिता हो।

राजीमती–दुनिया कुछ भी कहे। लौकिक रीति रिवाज भले ही मुझे विवाहिता न मानते हों किन्तु मेरा हृदय तो मानता है। मेरी अन्तरात्मा मुझे विवाहिता कह रही है। सांसारिक सुखों के प्रलोभन में पड़ कर अन्तरात्मा की उपेक्षा करना उचित नहीं है। मेरा न्याय मेरी अन्तरात्मा करती है, दुनिया की बातें नहीं।

माता– कुमार अरिष्टनेमि तोरण द्वार से लौट गए। उन्होंने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया। फिर तुम अपने को उनकी पत्नी कैसे मानती हो?

राजीमती– मेरा निर्णय भगवान् अरिष्टनेमि के निर्णय पर अवलम्बित नहीं है। उन्होंने अपना निर्णय अपनी इच्छानुसार किया है। वे चाहे मुझे अपनी पत्नी समझें या न समझें किन्तु मैं उन्हें एक बार अपना पति मान चुकी हूँ। मेरे हृदय में अब दूसरे

पुरुष के लिए स्थान नहीं है। दूसरे के विचारों पर अपने हृदय को डावाँडोल करना कायरता है।

माता— नेमिकुमार (अरिष्टनेमि) तो दीक्षा लेंगे। क्या उन के पीछे तुम भी ऐसी ही रह जाओगी?

राजीमती— माता जी! जब वे दीक्षा लेंगे तो मैं भी उन के मार्ग पर चलूँगी। पति कठोर संयम का पालन करे तो पत्नी को भोग-विलासों में पड़े रहना शोभा नहीं देता। जिस प्रकार वे काम क्रोध आदि आत्मा के शत्रुओं को जीतेंगे उसी प्रकार मैं भी उन पर विजय प्राप्त करूँगी।

राजीमती के उत्तर के सामने माता पिता कुछ न कह सके। वे राजीमती की सखियों को उसे समझाने के लिए कह कर चले गए।

सखियों ने राजीमती को समझाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह अपने निश्चय पर अटल थी। उसका हृदय, उसकी बुद्धि, उसकी वाणी तथा उसके प्रत्येक रोम में नेमिकुमार समा चुके थे। वह उन के प्रेम में ऐसी रंग गई थी, जिस पर दूसरा रंग चढ़ना असम्भव था। वह दिन रात उन के स्मरण में रहती हुई वैरागिन की तरह समय बिताने लगी।

सती स्त्रियाँ अपने जीवन को पति के जीवन में, अपने अस्तित्व को पति के अस्तित्व में तथा अपने सुख को पति के सुख में मिला देती हैं। उनका प्रेम सच्चा प्रेम होता है। उस में वासना की मुख्यता नहीं रहती। राजीमती के प्रेम में तो वासना की गन्ध भी न थी। उसे नेमि-कुमार द्वारा किसी सांसारिक सुख की प्राप्ति नहीं हुई थी, न भविष्य में प्राप्त होने की आशा थी फिर भी वह उनके प्रेम की मतवाली थी। वह अपनी आत्मा को भगवान् अरिष्टनेमि की आत्मा से मिला देना चाहती थी। शारीरिक सम्बन्ध की उसे परवाह न थी।

शुद्ध प्रेम मनुष्य को ऊँचा उठाता है। एक व्यक्ति से शुरू हो

कर वह विश्वप्रेम में बदल जाता है। इसके विपरीत जिस प्रेम में स्वार्थ या वासना है वह उत्तरोत्तर संकुचित होता जाता है और अन्त में स्वार्थ या वासना की पूर्ति न होते देख समाप्त हो जाता है। इस का असली नाम मोह है। मोह अन्धकारमय है और प्रेम प्रकाशमय। मोह का परिणाम दुःख और अज्ञान है, प्रेम का सुख और ज्ञान।

राजीमती के हृदय में शुद्ध प्रेम था। इस लिए भगवान् की आत्मा के साथ वह भी अपनी आत्मा को ऊँची उठाने का प्रयत्न कर रही थी। भगवान् के समान अपने प्रेम को बढ़ाते हुए वि व-प्रेम में बदल रही थी।

धीरे धीरे एक वर्ष पूरा हो गया। भगवान् अरिष्टनेमि का वार्षिकदान समाप्त हुआ। इन्द्र आदि देव दीक्षामहोत्सव मनाने के लिये आए। श्रीकृष्ण तथा दूसरे यादवों ने भी खूब तैयारियाँ कीं। अन्त में श्रावण शुक्ला षष्ठी को भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। जो दिन एक साल पहले उनके विवाह का था, वही आज संसार के सभी सम्बन्धों को छोड़ने का दिन बन गया। नेमिकुमार ने राजवैभव को छोड़ कर वन का रास्ता लिया। उनके साथ रथनेमि तथा दूसरे यादव कुमार भी दीक्षित हो गए।

भगवान् अरिष्टनेमि की दीक्षा का समाचार राजीमती को भी मालूम पड़ा। समाचार सुन कर वह विचार में पड़ गई कि अब मुझे क्या करना चाहिए। इस प्रकार विचार करते करते उसे जातिस्मरण हो गया। उसे मालूम पड़ा कि मेरा और भगवान् का प्रेम सम्बन्ध पिछले आठ भवों से चला आ रहा है। इस नवें भव में भगवान् का संयम अङ्गीकार करने का निश्चय पहले से था। मुझे प्रतिबोध देने की इच्छा से ही उन्होंने विवाह का आयोजन स्वीकार कर लिया था। अब मुझे भी शीघ्र संयम अङ्गीकार करके

उनका अनुसरण करना चाहिए। इस निश्चय पर पहुँचने से उसके मुख पर प्रसन्नता छा गई। उसके हृदय का सारा खेद मिट गया।

राजीमती की माता उस समय फिर समझाने आई। राजीमती के दीक्षा लेने के निश्चय को जान कर उसने कहा– बेटी! संयम को पालना सरल नहीं है। बड़े बड़े योद्धा भी इस के पालन करने में समर्थ नहीं होते। सर्दी और गरमी में नंगे पाँव घूमना, भिक्षा में रूखा सूखा जैसा आहार मिल जाय उसी पर सन्तोष करना, भयङ्कर कष्ट पड़ने पर भी मन में क्रोध या ग्लानि न आने देना, शत्रु और मित्र सभी पर समभाव रखना, मानसिक विचारों पर विजय प्राप्त करना सरल नहीं है। तुम्हारे सरीखी महलों में पली हुई कन्या उन्हें नहीं पाल सकती। बेटी! तुम्हें अपना निर्णय समझ कर करना चाहिए।

राजीमती ने उत्तर दिया– माताजी! मैं अच्छी तरह सोच चुकी हूँ। संयमी जीवन के कष्टों का भी मुझे पूरा ज्ञान है किन्तु पति के मार्ग पर चलने में मुझे सुख ही मालूम पड़ता है। उनके बिना इस अवस्था मे मुझे दुःख ही दुःख है। मेरे लिए केवल संयम ही सुख का मार्ग है, इस लिए आप दूसरी बातों को छोड़ कर मुझे दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति दीजिए।

राजीमती की माता को विश्वास हो गया कि राजीमती अपने निश्चय पर अटल है। उसने सारी बातें महाराज उग्रसेन को कहीं। अन्त में यही निर्णय किया कि राजीमती को उसकी इच्छानुसार चलने देना चाहिए। उसके मार्ग में बाधा डाल कर उसकी आत्मा को दुखी न करना चाहिए।

राजीमती ने अपने उपदेश से बहुत सी सखियों तथा दूसरी महिलाओं में भी वैराग्य भावना भर दी। सात सौ स्त्रियाँ उसके साथ दीक्षा लेने को तैयार हो गईं।

भगवान् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान होते ही राजीमती ने सात सौ सखियों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। महाराज उग्रसेन तथा श्रीकृष्ण ने उसका निष्क्रमण (दीक्षा या संसार त्याग) महोत्सव मनाया। राजकुमारी राजीमती साध्वी राजीमती बन गई। श्रीकृष्ण तथा सभी यादवों ने उसे वन्दना की। अपनी शिष्याओं सहित राजीमती तप संयम की आराधना तथा जनकल्याण करती हुई विचरने लगी। थोड़े ही समय में वह बहुश्रुत हो गई।

राजीमती के हृदय में भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन करने की पहले से ही प्रबल उत्कण्ठा थी। दीक्षा लेने के पश्चात् वह और बढ़ गई। उन दिनों भगवान् गिरिनार पर्वत पर विराजते थे। महासती राजीमती अपनी शिष्याओं के साथ विहार करती हुई गिरिनार के पास आ पहुँची और उल्लास पूर्वक ऊपर चढ़ने लगी मार्ग में जोर से आँधी चलने लगी, साथ में पानी भी बरसने लगा काली घटाओं के कारण अन्धेरा छा गया। पास खड़े वृक्ष भी दिखाई देने बन्द हो गए। साध्वी राजीमती उस बवण्डर में पड़ कर अकेली रह गई। सभी साध्वियों का साथ छूट गया। वर्षा के कारण उसके कपड़े भीग गए।

धीरे धीरे आँधी का जोर कम हुआ। वर्षा थम गई। राजीमती को एक गुफा दिखाई दी। कपड़े सुखाने के विचार से वह उसी में चली गई। गुफा को निर्जन समझ कर उसने कपड़े उतारे और सुखाने के लिए फैला दिए।

उसी गुफा में रथनेमि धर्मचिन्तन कर रहे थे। अंधेरा होने के कारण वे राजीमती को दिखाई नहीं दिए। रथनेमि की दृष्टि राजीमती के नग्न शरीर पर पड़ी। उनके हृदय में कामवासना जागृत हो गई। एकान्त स्थान, वर्षा का समय, सामने वस्त्र रहित सुन्दरी, ऐसी अवस्था में रथनेमि अपने को न सम्भाल सके। अपने अभिप्राय

को प्रकट करने के लिए वे विविध प्रकार से कुचेष्टाएं करने लगे।

राजीमती को पता चल गया कि गुफा में कोई पुरुष है और वह बुरी चेष्टाएं कर रहा है। वह डर गई कि कहीं यह पुरुष बल प्रयोग न करे। ऐसे समय में शील की रक्षा का प्रश्न उसके सामने बहुत विकट था। थोड़ी सी देर में उसने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। उसने सोचा– मैं वीरबाला हूँ। हँसते हुए प्राणों पर खेल सकती हूँ। फिर मुझे क्या डर है? मनुष्य तो क्या देव भी मेरे शील का भंग नहीं कर सकते। वस्त्र पहिनने में विलम्ब करना उचित न समझ कर वह मर्कटासन लगा कर बैठ गई। जिससे कामातुर व्यक्ति उस पर शीघ्र हमला न कर सके।

अँधेरे के कारण रथनेमि राजीमती को दिखाई न दे रहे थे। राजीमती कुछ प्रकाश में थी इस कारण रथनेमि को स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उन्होंने राजीमती को पहिचान लिया और चेहरे की भावभङ्गी से जान लिया कि राजीमती भयभीत हो गई है। वे अपने स्थान से उठ कर राजीमती के पास आए और कहने लगे– राजीमती! डरो मत। मैं तुम्हारा प्रेमी रथनेमि हूँ। मेरे द्वारा तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। भय और लज्जा को छोड़ दो। आओ हम तुम मनुष्योचित सुख भोगें। यह स्थान एकान्त है, कोई देखने वाला नहीं है। दुर्लभ नरजन्म को पाकर भी सुखों से वञ्चित रहना मूर्खता है।

रथनेमि के शब्द सुन कर राजीमती का भय कुछ कम हो गया। उसने सोचा– रथनेमि कुलीन पुरुष हैं इस लिए समझाने पर मान जाएंगे। उसने मर्कटासन त्याग कर कपड़े पहिनना शुरू किया। रथनेमि कामुक बन कर राजीमती से विविध प्रकार की प्रार्थनाएं कर रहे थे और राजीमती कपड़े पहिन रही थी। कपड़े पहिन लेने पर उसने कहा– रथनेमि अनगार! आपने मुनिव्रत अङ्गीकार किया है। फिर आप कामुक तथा पतित लोगों के समान

कैसी बातें कर रहे हैं ?

रथनेमि– साधु होने पर भी इस समय मुझे तुम्हारे सिवाय कुछ नहीं सूझ रहा है। तुम्हारे रूप पर आसक्त होकर मैं सारा ज्ञान, ध्यान भूल गया हूँ।

राजीमती–आपको अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहना चाहिए। क्या आप भूल गए कि आपने संयम अङ्गीकार करते समय क्या प्रतिज्ञाएं की थी ?

रथनेमि–मुझे वे प्रतिज्ञाएं याद हैं,किन्तु यहाँ कौन देख रहा है ?

राजीमती– जिसे दूसरा कोई न देखे क्या वह पाप नहीं होता ? अपनी अन्तरात्मा से पूछिए। क्या छिप कर पाप करने वाला पतित नहीं माना जाता ?

मायावी होने के कारण वह तो खुल्लमखुल्ला पाप करने वाले से भी अधिक पातकी है।

रथनेमि– अगर छिप कर ऐसा करना तुम्हें पसन्द नहीं है तो आओ हम दोनों विवाह करलें और संसार का आनन्द उठाएं। वृद्धावस्था आने पर फिर दीक्षा ले लेंगे।

राजीमती– आपने उस समय स्वयं लाए हुए पेय पदार्थ को क्यों नहीं पिया था ?

रथनेमि– वह तुम्हारा वमन किया हुआ था।

राजीमती–यदि आप ही का वमन होता तो आप पी जाते ?

रथनेमि–यह कैसे हो सकता है,क्या वमन को भी कोई पीता है ?

राजीमती– तो आप कामभोगों को छोड़ कर (उनका वमन करके) फिर स्वीकार करने के लिये कैसे तैयार हो रहे हैं ?

रथनेमि कुमार ! आप अन्धकवृष्णि के पौत्र, महाराजा समुद्र विजय के पुत्र, धर्मचक्रवर्ती तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के भाई हैं। त्यागे हुए को फिर स्वीकार करने की इच्छा आपके लिये लज्जा

की बात है।

पक्खन्दे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे॥

अर्थात्—अगन्धन कुल में पैदा हुए साँप जाज्वल्यमान प्रचण्ड अग्नि में गिर कर भस्म हो जाते हैं किन्तु उगले हुए विष को पीना पसन्द नहीं करते।

आप तो मनुष्य हैं, महापुरुषों के कुल में आपका जन्म हुआ है फिर यह दुर्भावना कहाँ से आई?

आपने संसार छोड़ा है। मैंने भी विषयवासना छोड़ कर महाव्रत अङ्गीकार किये हैं। आप और भगवान् दोनों एक कुल के हैं। दोनों ने एक ही माता के पेट से जन्म लिया है फिर भी आप दोनों में कितना अन्तर है। जरा अपनी आत्मा की तरफ ध्यान दीजिए। चर्मचक्षुओं के बजाय आभ्यन्तर नेत्रों से देखिए। जो शरीर आपको सुन्दर दिखाई दे रहा है, उसके अन्दर रुधिर, माँस, चर्बी, विष्टा आदि अशुचि पदार्थ भरे हुए हैं। क्या ऐसी अपवित्र वस्तु पर भी आप आसक्त हो रहे हैं? यदि आप सरीखे मुनिवर भी इस प्रकार डाँवा-डोल होने लगेंगे तो दूसरों का क्या हाल होगा? जरा विचार कर देखिए कि आपके मुख से क्या ऐसी बातें शोभा देती हैं? अपने कृत्य पर पश्चात्ताप कीजिए। भविष्य के लिए संयम में दृढ़ रहने का निश्चय कीजिए। तभी आपकी आत्मा का कल्याण हो सकेगा।

रथनेमि का मस्तक राजीमती के सामने लज्जा से झुक गया। उन्हें अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होने लगा। अपने अपराध के लिए वे राजीमती से बार बार क्षमा माँगने लगे।

राजीमती ने कहा— रथनेमि मुनिवर! क्षमा अपनी आत्मा से माँगिए। पाप करने वाला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इतना नुकसान नहीं पहुँचाता जितना अपनी आत्मा को पतित बनाता है। इस लिए

अधिक हानि आपकी ही हुई है। उसके लिए पश्चात्ताप करके आत्मा को शुद्ध बनाइए। पश्चात्ताप की आग में पाप कर्म भस्म हो जाते हैं। भविष्य के लिए पाप से बचने की प्रतिज्ञा कीजिए। अपने मन को शुभध्यान में लगाए रखिए जिससे आत्मा का उत्तरोत्तर विकास होता जाय।

तीसे सो वयणं सुच्चा, सजईए सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइओ ॥

अर्थात्- जिस प्रकार अंकुश द्वारा हाथी ठिकाने पर आ जाता है उसी प्रकार सती राजीमती द्वारा कहे हुए हित वचनों को सुन कर रथनेमि धर्म में स्थिर हो गये।

रथनेमि ने भविष्य के लिए संयम में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की। राजीमती ने उसे संयम के लिए फिर प्रोत्साहित किया और गुफा से निकल कर अपना रास्ता लिया। आगे चल कर उसे दूसरी साध्वियाँ भी मिल गईं। सब के साथ वह पहाड़ पर चढ़ने लगी।

धीरे धीरे सभी साध्वियाँ भगवान् अरिष्टनेमि के पास जा पहुँची। राजीमती की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई। आनन्द से उस का हृदय गद्गद् हो उठा। उसने भगवान् के दर्शन किए। उपदेश सुना। आत्मा को सफल बनाया। भगवान् के उपदेशानुसार कठोर तप और संयम की आराधना करने लगी। फल स्वरूप उसके सभी कर्म शीघ्र नष्ट हो गए। भगवान् के मोक्ष पधारने से चौपन दिन पहले वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

वासना रहित सच्चा प्रेम, पूर्ण ब्रह्मचर्य, कठोर संयम, उग्र तपस्या अनुपम पतिभक्ति तथा गिरते हुए को स्थिर करने के लिए राजीमती का आदर्श सदा जाज्वल्यमान रहेगा।

(पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान में आये हुए राजीमती चरित्र के आधार पर।

(५) द्रौपदी

प्राचीन काल में चम्पा नाम की नगरी थी। उसके बाहर उत्तर पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में सुभूमिभाग नाम का उद्यान था।

चम्पा नगरी में तीन ब्राह्मण रहते थे- सोम, सोमदत्त और सोमभूति। वे तीनों भाई भाई थे। तीनों धनाढ्य, वेदों के जानकार तथा शास्त्रों में प्रवीण थे। तीनों के क्रमशः नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री नाम वाली तीन भार्याएं थीं। तीनों सुकोमल तथा उन ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय थीं। मनुष्य सम्बन्धी भोगों को यथेष्ट भोगती हुई कालयापन कर रही थीं।

एक बार तीनों भाइयों ने विचार किया- हम लोगों के पास बहुत धन है। सात पीढ़ी तक भी यदि हम बहुत दान करें तथा बहुत बाँटें तब भी समाप्त नहीं होगा, इस लिए प्रत्येक को बारी बारी से विपुल अशन पान आदि तैयार कराने चाहिए और सभी को वहीं एक साथ भोजन करना चाहिए। यह सोच कर वे सब बारी बारी से प्रत्येक के घर भोजन करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे।

एक बार नागश्री के घर भोजन की बारी आई। उसने विपुल अशन पान आदि तैयार किए। शरद् ऋतु सम्बन्धी अलाबु (तुम्बा या घीया) का तज, इलायची वगैरह कई प्रकार के मसाले डाल कर शाक बनाया। तैयार हो जाने पर नागश्री ने एक बूँद हाथ में लेकर उसे चखा। वह उसे खारा, कड़वा, अखाद्य और अभक्ष्य मालूम पड़ा। नागश्री बहुत पश्चात्ताप करने लगी। कड़वे शाक को कोने में रख कर उसने मीठे अलाबु (तुम्बा या घीया) का शाक बनाया। सभी ने भोजन किया और अपने अपने कार्य में प्रवृत्त हो गए।

उन दिनों धर्मघोष नाम के स्थविर मुनि अपने शिष्य परिवार

सहित विहार करते हुए चम्पानगरी के सुभूमिभाग नामक उद्यान में पधारे। उन्हें वन्दना करने के लिए नगरी के बहुत से लोग गए। मुनि ने धर्मोपदेश दिया। व्याख्यान के बाद सभी लोग अपने अपने स्थान पर चले आए।

धर्मघोष स्थविर के शिष्य धर्मरुचि अनगार मास मास खमण की तपस्या करते हुए विचर रहे थे। मासखमण के पारने के दिन धर्मरुचि अनगार ने पहिली पोरिसी में स्वाध्याय किया। दूसरी में ध्यान किया। फिर तीसरी पोरिसी में पात्र वगैरह की पडिलेहणा करके धर्मघोष स्थविर की आज्ञा ली। चम्पा नगरी में आहार के लिए उच्च नीच कुलों में घूमते हुए वे नागश्री के घर पहुँचे। नागश्री उन्हें देख कर खड़ी हुई और रसोई में जाकर वही कड़वे तुम्बे का शाक उठा लाई। उसे धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

पर्याप्त आहार आया जान कर धर्मरुचि अनगार नागश्री ब्राह्मणी के घर से निकल कर उपाश्रय में आए। आहार का पात्र हाथ में लेकर गुरु को बताया। धर्मघोष स्थविर को तुम्बे की गन्ध बुरी लगी। शाक की एक बूँद हाथ में ले कर उन्होंने उसे चखा तो बहुत कड़वा तथा अभक्ष्य मालूम पड़ा। उन्होंने धर्मरुचि अनगार से कहा—हे देवानुप्रिय! कड़वे तुम्बे के इस शाक का यदि तुम आहार करोगे तो अकालमृत्यु प्राप्त करोगे। इस लिए इस शाक को किसी एकान्त तथा जीव जन्तुओं से रहित स्थण्डिल में परठ आओ। दूसरा एषणीय आहार लाकर पारना करो।

धर्मरुचि अनगार गुरु की आज्ञा से सुभूमिभाग नामक उद्यान से कुछ दूर गए। स्थण्डिल की पडिलेहणा करके उन्होंने शाक की एक बूँद जमीन पर डाली। उस की गन्ध से उसी समय वहाँ हजारों कीड़ियाँ आ गईं और स्वाद लेते ही अकाल मृत्यु प्राप्त करने लगीं। यह देख धर्मरुचि अनगार ने सोचा— एक बूँद से ही इतने जीवों

की हिंसा होती है तो यदि मैं सारा शाक यहाँ परठ दूँगा तो बहुत से प्राण (द्वीन्द्रियादि), भूत (वनस्पति) जीव (पञ्चेन्द्रिय) तथा सत्त्व (पृथ्वीकायादिक) मारे जावेंगे। इस लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं स्वयं इस शाक का आहार कर लूँ। यह शाक मेरे शरीर में ही गल जायगा। यह सोच कर उन्होंने मुखवस्त्रिका की पडिलेहणा की। अपने शरीर को पूँजा। इसके बाद उस कड़वे शाक को इस तरह अपने पेट में डाल लिया जिस तरह साँप बिल में प्रवेश करता है।

आहार करने के बाद एक मुहूर्त के अन्दर अन्दर वह शाक विषरूप में परिणत हो गया। सारे शरीर में असह्य वेदना होने लगी। उनमें बैठने, उठने की शक्ति नष्ट हो गई। वे बलरहित पराक्रमरहित और वीर्यरहित हो गए।

अपने आयुष्य को समाप्तप्राय जान कर धर्मरुचि अनगार ने पात्र अलग रख दिए। स्थण्डिल की पडिलेहणा करके दर्भ का संथारा बिछाया। उस पर बैठ कर पूर्व की ओर मुँह किया। दोनों हाथों की अञ्जलि को ललाट पर रख कर उन्होंने इस प्रकार बोलना शुरू किया—

णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं, णमोत्थुणं धम्मघोसाणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं, पुव्विं पि णं मम धम्मघोसाणं थेराणं अन्तिए सव्वे पाणातिवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव परिग्गहे। इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव भगवंताणं अतियं सव्वं पाणातिवायं पच्चक्खामि जाव परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

अर्थात्— अरिहन्त भगवान् और सिद्ध भगवान् को मेरा नमस्कार हो तथा मेरे धर्माचार्य्य एवं धर्मोपदेशक धर्मघोष स्थविर को नमस्कार हो। मैंने आचार्य भगवान् के पास पहले सर्व प्राणातिपात से लेकर परिग्रह तक सब पापों का यावज्जीवन त्याग किया था। अब फिर भी

उन सभी पापों का त्याग करता हूँ ।

इस प्रकार चरम श्वासोच्छ्वास तक शरीर का ममत्व छोड़ कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके धर्मरुचि अनगार समाधि में स्थिर हो गये । सारे शरीर में विष व्याप्त हो जाने से प्रबल वेदना उत्पन्न हुई जिससे तत्काल वे कालधर्म को प्राप्त हो गये ।

धर्मरुचि अनगार को गये हुए जब बहुत समय हो गया तो धर्मघोष आचार्य ने दूसरे साधुओं को उनका पता लगाने के लिये भेजा। स्थण्डिल भूमि में जाकर साधुओं ने देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि धर्मरुचि अनगार कालधर्म को प्राप्त होगये हैं। उसी समय साधुओं ने उसके निमित्त कायोत्सर्ग किया। इसके बाद धर्मरुचि अनगार के पात्र आदि लेकर वे धर्मघोष आचार्य के पास आए और उनके सामने पात्र आदि रख कर धर्मरुचि अनगार के काल धर्म प्राप्त होने की बात कही।

धर्मघोष आचार्य ने पूर्वों के ज्ञान में उपयोग देकर देखा और सब साधुओं को बुला कर इस प्रकार कहा—आर्यो ! मेरा शिष्य धर्मरुचि अनगार प्रकृति का भद्रिक और विनयवान् था। निरन्तर एक एक महीने से पारना करता था। आज मासखमण के पारने के लिए वह गोचरी के लिए गया। नागश्री ब्राह्मणी ने उसे कड़वे तुम्बे का शाक बहरा दिया। उसके खाने से उसका देहान्त हो गया है। परिणामों की शुद्धता से वह सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ है।

यह खबर जब शहर में फैली तो लोग नागश्री को धिक्कारने लगे। वे तीनों ब्राह्मण भाई नागश्री के इस कार्य से उस पर बहुत कुपित हुए। घर आकर उन्होंने नागश्री को बहुत बुरा भला कहा और निर्भर्त्सना पूर्वक उसे घर से बाहर निकाल दिया। वह जहाँ भी जाती लोग उसका तिरस्कार करते, धिक्कारते और अपने यहाँ

से निकाल देते। नागश्री बहुत दुखी हो गई। हाथ में मिट्टी का पात्र लेकर वह घर घर भीख मांगने लगी। थोड़े दिनों बाद उसके शरीर में श्वास, कास, योनिशूल, कोढ आदि सोलह रोग उत्पन्न हुए। मर कर छठी नारकी में बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारकियों में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर मत्स्य, सातवीं नरक, मत्स्य, सातवीं नरक, मत्स्य, छठी नरक, उरग(सर्प), इस प्रकार बीच में तिर्यञ्च का भव करती हुई प्रत्येक नरक में दो दो बार उत्पन्न हुई। फिर पृथ्वीकाय, अप्काय आदि एकेन्द्रिय जीवों में तथा द्वीन्द्रियादि जीवों में अनेक बार उत्पन्न हुई। इस प्रकार नरक और तिर्यञ्च के अनेक भव करता हुआ नागश्री का जीव चम्पा नगर निवासी सागरदत्त सार्थवाह की भार्या भद्रा की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ।

जन्मोत्सव मना कर माता पिता ने पुत्री का नाम सुकुमालिका रखा। माता पिता की इकलौती सन्तान होने से वह उनको बहुत प्रिय थी। पांच धायों द्वारा उसका लालन पालन होने लगा। सुरक्षित बेल की तरह वह बढ़ने लगी। क्रमशः बाल्यावस्था को छोड़ कर वह यौवन वय को प्राप्त हुई। अब माता पिता को उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई।

चम्पा नगरी में जिनदत्त नाम का एक सार्थवाह रहता था। उस की स्त्री का नाम भद्रा और पुत्र का नाम सागर था। सागर बहुत रूपवान् था। विद्या और कला में प्रवीण होकर वह यौवन वय को प्राप्त हुआ। माता पिता उसके लिये योग्य कन्या की खोज करने लगे।

एक दिन जिनदत्त सागरदत्त के घर के नजदीक होकर जा रहा था। अपनी सखियों के साथ कनक कन्दुक(सुनहली गेंद) से खेलती हुई सुकुमालिका को उसने देखा। नौकरों द्वारा दरियाफ्त कराने पर उसे मालूम हुआ कि यह सागरदत्त की पुत्री सुकुमालिका है।

इसके पश्चात् एक समय जिनदत्त सागरदत्त के घर गया। उचित सत्कार करने के पश्चात् सागरदत्त ने उसे आने का कारण पूछा। जिनदत्त ने अपने पुत्र सागर के लिये सुकुमालिका की माँगणी की। सागरदत्त ने कहा- हमारे यह एक ही सन्तान है। हमें यह बहुत प्रिय है। हम इसका वियोग सहन नहीं कर सकते, इस लिये यदि आपका पुत्र हमारे यहाँ घरजमाई तरीके रहे तो मैं अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर सकता हूँ। जिनदत्त ने सागरदत्त की यह शर्त स्वीकार कर ली। शुभ मुहूर्त देख कर सागरदत्त ने अपनी पुत्री सुकुमालिका का विवाह सागर के साथ कर दिया।

सागर को सुकुमालिका के अङ्ग का स्पर्श असिपत्र (खड्ग) के समान अति तीक्ष्ण और कष्टकारक प्रतीत हुआ। सोती हुई सुकुमालिका को छोड़ कर वह अपने घर भाग आया। पति वियोग से सुकुमालिका उदासीन और चिन्तित रहने लगी।

पिता ने कहा- पुत्री! यह तेरे पूर्व भव के अशुभ कर्मों का फल है। तू चिन्ता मत कर। अपने रसोईघर में अशन, पान आदि वस्तुएं हर समय तैयार रहती हैं, उन्हें साधु महात्माओं को बहराती हुई तू धर्म ध्यान कर।

सुकुमालिका पिता के कथनानुसार कार्य करने लगी। एक समय गोपालिका नाम की बहुश्रुत साध्वी अपनी शिष्याओं के साथ वहाँ आई। अशन, पान आदि बहराने के पश्चात् सुकुमालिका ने उनसे पूछा- हे आर्याओ! तुम बहुत मंत्र तंत्र जानती हो। मुझे भी ऐसा कोई मंत्र बतलाओ जिससे मैं अपने पति को इष्ट हो जाऊँ। साध्वियों ने कहा- हे भद्रे! इन बातों को बताना तो दूर रहा, हमें ऐसी बातें सुनना भी नहीं कल्पता। साध्वियों ने सुकुमालिका को केवलिभाषित धर्म का उपदेश दिया जिससे उसे संसार से विरक्ति होगई। अपने पिता सागरदत्त की आज्ञा लेकर उसने गोपालिका आर्या के

पास दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर अनेक प्रकार की कठोर तपस्या करती हुई विचरने लगी।

एक समय वह गोपालिका आर्या के पास आकर इस प्रकार कहने लगी–पूज्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं सुभूमिभाग उद्यान के आसपास बेले बेले पारना करती हुई सूर्य की आतापना लेकर विचरना चाहती हूँ। गोपालिका आर्या ने कहा–साध्वियों को ग्राम यावत् सन्निवेश के बाहर सूर्य की आतापना लेना नहीं कल्पता। अन्य साध्वियों के साथ रह कर उपाश्रय के अन्दर ही अपने शरीर को कपड़े से ढक कर सूर्य की आतापना लेना कल्पता है।

सुकुमालिका ने अपनी गुरुआनी की बात न मानी। वह सुभूमिभाग उद्यान के कुछ दूर आतापना लेने लगी। एक समय देवदत्ता नाम की एक वेश्या पाँच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करने के लिये सुभूमिभाग उद्यान में आई। उसे देख कर सुकुमालिका के हृदय में विचार आया कि यह स्त्री भाग्यशालिनी है जिससे यह पाँच पुरुषों को वल्लभ एवं प्रिय है। यदि मेरे त्याग, तप एवं ब्रह्मचर्य का कुछ भी फल हो तो आगामी भव में मैं भी इसी प्रकार पाँच पुरुषों को वल्लभ एवं प्रिय बनूँ। इस प्रकार सुकुमालिका ने नियाणा कर लिया।

कुछ समय पश्चात् वह गोपालिका आर्या के पास वापिस चली आई। अब वह शरीर बकुशा होगई अर्थात् शरीर की शुश्रूषा करने लग गई। अपने शरीर के प्रत्येक भाग को धोने लगी तथा स्वाध्याय, शय्या के स्थान को भी जल से छिड़कने लगी। गोपालिका आर्या ने उसे ऐसा करने से मना किया किन्तु सुकुमालिका ने उसकी बात न मानी और वह ऐसा ही करती हुई रहने लगी। दूसरी साध्वियों को उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उसका आदर सत्कार करना छोड़ दिया। इससे गोपालिका आर्या को छोड़ कर सुकुमालिका अलग उपाश्रय में अकेली रहने लगी। अब वह पासत्था,

पासत्थ विहारी, ओसण्णा, ओसण्ण विहारी, कुसीला, कुसील विहारी, संसत्ता और संसत्त विहारी होगई अर्थात् संयम में शिथिल होगई।

इस प्रकार कई वर्षों तक साधुपर्याय का पालन कर अन्तिम समय में पन्द्रह दिन की संलेखना की। अपने अयोग्य आचरण की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही वह कालधर्म को प्राप्त होगई। मर कर ईशान देवलोक में नव पल्योपम की स्थिति वाली देवगणिका (अपरिगृहीता देवी) हुई।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पञ्चाल देश के अन्दर एक अति रमणीय कम्पिलपुर नाम का नगर था। उसमें द्रुपद राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम चुलणी था। उनके पुत्र का नाम धृष्टद्युम्न था। वह युवराज था। ईशान कल्प का आयुष्य पूरा होने पर सुकुमालिका का जीव रानी चुलणी की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम द्रौपदी रक्खा।

पाँच धायों द्वारा लालन पालन की जाती हुई द्रौपदी पर्वत की गुफा में रही हुई चम्पकलता की तरह बढ़ने लगी। क्रमशः बाल्यावस्था को छोड़ कर वह युवावस्था को प्राप्त हुई। राजा द्रुपद को उसके लिये योग्य वर की चिन्ता हुई।

राजा द्रुपद ने द्रौपदी का स्वयंवर करने का निश्चय किया। नौकरों को बुला कर उसने स्वयंवर मण्डप बनाने की आज्ञा दी। मण्डप तैयार हो जाने पर द्रुपद राजा ने अनेक देशों के राजाओं के पास दूतों द्वारा आमन्त्रण भेजे।

निश्चित तिथि पर विविध देशों के अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव भी अनेक यादवकुमार और पांच पाण्डवों को साथ लेकर वहाँ आये। सभी लोग अपने अपने योग्य आसनों पर बैठ गये। स्नान करके वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर राजकुमारी द्रौपदी एक दासी के साथ स्वयंवर मण्डप

में आई। दासी बाएं हाथ में एक दर्पण लिये हुई थी। उसमें राजाओं का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उनके नाम, स्थान तथा गुणों का परिचय देती हुई वह द्रौपदी को साथ लेकर आगे बढ़ रही थी। धीरे धीरे वह जहाँ पाँच पाण्डव बैठे हुए थे वहाँ आ पहुँची। पूर्व जन्म में किये हुए नियाणे से प्रेरित हो कर उसने पाँचों पाण्डवों के गले में वरमाला डाल दी। 'राजकुमारी द्रौपदी ने श्रेष्ठ वरण किया' ऐसा कह कर सब राजाओं ने उसका अनुमोदन किया।

इसके पश्चात् राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ कर दिया। आठ करोड़ सोनैयों का प्रीतिदान दिया। विपुल अशन, पान तथा वस्त्र आभरण आदि से पाण्डवों का उचित सत्कार कर उन्हें विदा किया। (ज्ञाताधर्म कथांग सोलहवां अध्ययन)

द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ होगया। बारी बारी से वह प्रत्येक की पत्नी रहने लगी। जिस दिन जिसकी बारी होती उस दिन उसे पति मान कर बाकी के साथ जेठ या देवर सरीखा वर्ताव रखती।

एक बार द्रौपदी शरीर परिमाण दर्पण में अपने शरीर को बार बार देख रही थी। इतने में वहाँ नारद ऋषि आए। द्रौपदी दर्पण देखने में लीन थी, इस लिए उसने नारदजी को नहीं देखा। नारद कुपित होकर धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी में पहुँचे। वहाँ पद्मोत्तर राजा राज्य करता था। नारदजी उसी के पास गए। राजा ने विनय पूर्वक उनका स्वागत किया और पूछा– महाराज! आप सब जगह घूमते रहते हैं कोई नई बात बताइए। नारदजी ने उत्तर दिया– मैं हस्तिनापुर गया था वहाँ पाण्डवों के अन्तःपुर में द्रौपदी को देखा। तुम्हारे अन्तःपुर में ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। पद्मोत्तर राजा ने द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए एक देव की आराधना की। देव द्रौपदी को उठा कर वहाँ ले आया।

पद्मोत्तर उससे कहने लगा—द्रौपदी ! तुम मेरे साथ भोग भोगो। यह राज्य तुम्हारा है। यह सारा वैभव तुम्हारा है। इसे स्वीकार करो। मैं तुम्हें सभी रानियों में पटरानी मानूँगा। सभी काम तुम्हें पूछ कर करूँगा। इस प्रकार कई उपायों से उसने द्रौपदी को सतीत्व से विचलित करने का प्रयत्न किया किन्तु द्रौपदी के हृदय में लेशमात्र भी विकार नहीं आया। वह पंच परमेष्ठी का ध्यान करती हुई तपस्या में लीन रहने लगी।

द्रौपदी का हरण हुआ जान कर पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के पास जाकर सारा हाल कहा। यह सुन कर श्रीकृष्ण भी विचार में पड़ गए।

द्रौपदी का पता लगाने के लिए वे उपाय सोचने लगे। इतने में नारद ऋषि वहाँ आ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा—नारदजी ! आपने कहीं द्रौपदी को देखा है ? नारद ने उत्तर दिया— धातकी-खण्ड द्वीप में अमरकंका नगरी के राजा पद्मोत्तर के अन्तःपुर में मैंने द्रौपदी जैसी स्त्री देखी है। यह सुन कर श्रीकृष्ण ने सुस्थित देव की आराधना की। पाँच पाण्डव और श्रीकृष्ण छहों रथ में बैठ कर अमरकंका पहुँचे और नगरी के बाहर उद्यान में ठहर गए। पाँचों पाण्डव पद्मोत्तर राजा के साथ युद्ध करने गए किन्तु हार कर वापिस चले आए। यह देख कर श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध करने के लिये गए। राजा पद्मोत्तर हार कर किले में घुस गया। श्री कृष्ण ने किले पर चढ़ कर विकराल रूप धारण कर लिया और पृथ्वी को इस तरह कँपाया कि बहुत से घर गिर पड़े। पद्मोत्तर डर कर श्रीकृष्ण के पैरों में आ गिरा और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा। श्रीकृष्ण द्रौपदी को लेकर वापिस चले आए।

उसी समय धातकीखण्ड के मुनिसुव्रत नाम के तीर्थङ्कर धर्मदेशना दे रहे थे। वहाँ कपिल नाम के वासुदेव ने उनसे श्रीकृष्ण के आगमन की बात सुनी। वह उनसे मिलने के लिए समुद्र के किनारे गया।

श्रीकृष्ण पहले ही रवाना हो चुके थे। समुद्र में जाते हुए श्रीकृष्ण के रथ की ध्वजा को देख कर धातकीखण्ड के वासुदेव कपिल ने उनसे मिलने के लिए अपना शंख बजाया। श्रीकृष्ण ने भी उसका उत्तर देने के लिए अपना शंख बजाया। दोनों वासुदेवों की शंखों से बातचीत हुई।

पाँचों पाण्डव तथा श्रीकृष्ण द्रौपदी के साथ लवण समुद्र को पार करके गंगा के किनारे आए और वहाँ से अपनी राजधानी में पहुँच गए।

एक बार पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया। देश विदेश के सभी राजाओं को निमन्त्रण भेजा गया। इन्द्रप्रस्थपुरी को खूब सजाया गया। वह साक्षात् इन्द्रपुरी सी मालूम पड़ने लगी। मयदानव ने सभा मण्डप रचने में अपूर्व कौशल दिखलाया। जहाँ स्थल था वहाँ पानी दिखाई देता था और जहाँ पानी था वहाँ सूखी जमीन दिखाई देती थी। देश विदेश के राजा इकट्ठे हुए। युधिष्ठिर के चरणों में गिरे। दुर्योधन वगैरह सभी कौरव भी आए।

एक बार द्रौपदी और भीम बैठे हुए सभामण्डप को देख रहे थे। इतने में वहाँ दुर्योधन आया। सूखी जमीन में पानी समझ कर उसने कपड़े ऊँचे उठा लिये। पानी वाली जगह को सूखी जमीन समझ कर वैसे ही चला गया और उसके कपड़े भीग गए। द्रौपदी और भीम यह सब देख रहे थे, इस लिए हँसने लगे। द्रौपदी ने मज़ाक करते हुए कहा—अन्धे के बेटे भी अन्धे ही होते हैं।

दुर्योधन के दिल में यह बात तीर की तरह चुभ गई। उसने मन ही मन इस अपमान का बदला लेने के लिए निश्चय कर लिया।

दुर्योधन का मामा शकुनि षड्यंत्र रचने में बहुत चतुर था। जुए में सिद्धहस्त था। उसका फेंका हुआ पासा कभी उल्टा न पड़ता था। दुर्योधन ने उसी से कोई उपाय पूछा।

शकुनि ने उत्तर दिया– एक ही उपाय है। तुम युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए तैयार करो। इसके लिए उनके पास विदुरजी का भेज दो। उनके कहने से वे मान जाएँगे। धृतराष्ट्र से तुम स्वयं पूछ लो। खेलते समय यह शर्त रक्खो कि जो हारे वह राजगद्दी छोड़ दे। तुम्हारी तरफ से पासे मैं फेंकूँगा। फिर देखना, एक भी दाव उल्टा न पड़ेगा।

दुर्योधन ने उसी प्रकार किया। अपने पिता धृतराष्ट्र को पैरों में गिर कर तथा उल्टी सीधी बातें करके, मना लिया। पुत्रस्नेह के कारण वे उसकी बात को बुरी होने पर भी न टाल सके। विदुर के कहने पर युधिष्ठिर भी तैयार हो गए। जुआ खेला गया। एक तरफ दुर्योधन, शकुनि और सभी कौरव थे, दूसरी ओर पाण्डव। शकुनि के पासे बिल्कुल ठीक पड़ रहे थे। युधिष्ठिर अपने राज्य को हार गए। चारों भाई तथा अपने को हार गए। अन्त में द्रौपदी को भी हार गए। जुए में पड़ कर वे अपनी राजलक्ष्मी, अपने और भाइओं के शरीर तथा अपनी रानी द्रौपदी सभी को खो बैठे। वे सभी दुर्योधन के दास बन चुके थे।

महाराजा दुर्योधन का दरबार लगा हुआ था। भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर आदि सभी अपने अपने आसन पर शोभित थे। एक तरफ पांचों पाण्डव अपना सिर झुकाए बैठे थे। इतने में दुःशासन द्रौपदी को चोटी से पकड़ कर लाया। दरवाजे पर द्रौपदी थोड़ी सी हिचकिचाई तो दुःशासन ने एक धप जमाया और भरी सभा में द्रौपदी को खींच लिया।

द्रौपदी का क्रोध भभक उठा। सिंहिनी के समान गर्जते हुए उसने कहा– पितामह भीष्म! आचार्य द्रोण! विदुरजी! क्या आप इस समय शान्त बैठे रहना ही अपना कर्तव्य समझते हैं? द्रुपद राजा की पुत्री, पाण्डवों की धर्मपत्नी तथा धृतराष्ट्र की कुल-

वधू को पापी दुःशासन इस प्रकार अपमानित करे और आप बैठे बैठे देखते रहें, क्या यही न्याय है? क्या आप एक अबला के सन्मान की रक्षा नहीं कर सकते?

'देखो ऐसी कुलवधू! पाँच पति फिर भी कुलवधू। तुम्हारे पति जुए में हार गए हैं। वे हमारे दास बन चुके हैं। साथ में तुम भी' दुःशासन ने डाटते हुए कहा।

'बस बस, मैं कभी गुलाम नहीं हो सकती। मैं सभा से पूछती हूँ कि मेरे पतियों ने मुझे स्वयं दास होने से पहले दाव पर रक्खा था या बाद में? अगर पहले रखा हो तभी मैं गुलाम बन सकती हूँ, बाद में रखने पर नहीं।' द्रौपदी ने कहा।

सभी लोग शान्त बैठे रहे। उत्तर कौन दे? वह सभा न्याय करने के लिये नहीं जुड़ी थी किन्तु पाण्डवों का विनाश करने के लिए। वहाँ न्याय को सुनने वाला कोई न था। यद्यपि भीष्म, द्रोणाचार्य वगैरह स्वयं पापी न थे किन्तु पापी मालिक की नौकरी के कारण उनका हृदय भी कमजोर बन गया था। इसी लिए वे दुःशासन का विरोध न कर सके।

सभी को शान्त देख कर दुःशासन, द्रौपदी और पाण्डवों को लक्ष्य कर कहने लगा— हम कुछ भी नहीं सुनना चाहते। तुम सभी राजसी पोशाक उतार दो। तुम छहों हमारे गुलाम हो।

पाँचों पाण्डवों ने राजसी पोशाक उतार दी किन्तु द्रौपदी चुपचाप वैसी ही खड़ी रही।

'क्यों तुम नहीं सुन रही हो?' दुःशासन ने चिल्ला कर कहा।

'मैंने एक ही कपड़ा पहिन रखा है, मैं रजस्वला हूँ।' द्रौपदी ने उत्तर दिया।

'अब रजस्वला बन गई' कह कर दुःशासन ने उसका पल्ला पकड़ लिया। भीम अपने क्रोध को न रोक सका। उसने खड़े होकर

अपनी गदा भूमि पर फटकारी। युधिष्ठिर ने उसे मना कर दिया क्योंकि वे दास थे।

यह देख कर दुर्योधन बोला– देख क्या रहे हो ? खींच डालो।

द्रौपदी प्रभु का स्मरण कर रही थी। मानवसमाज में उस समय उसे कोई ऐसा व्यक्ति नजर नहीं आ रहा था जो एक अबला की लाज बचा सके। भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर आदि बड़े बड़े धर्मात्मा और नीतिज्ञ उस समय गुलामी के बन्धन में जकड़े हुए थे। वे दुर्योधन के वेतनभोगी दास थे, इस लिए उसका विरोध न कर सकते थे। मानवसमाज जो नियम अपने कल्याण के लिए बनाता है, वे ही समय पड़ने पर अन्याय के पोषक बन जाते हैं।

ऐसे समय में द्रौपदी को भगवान् के नाम के सिवाय और कोई रक्षक दिखाई नहीं दे रहा था। वह अपनी लज्जा बचाने के लिए प्रभु से प्रार्थना कर रही थी। दुःशासन उसके चीर को बलपूर्वक खींच रहा था।

आत्मा में अनन्त शक्ति है, उसके सामने बाह्य शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। जब तक मनुष्य बाह्य शक्ति पर भरोसा रखता है, बाह्य शस्त्रास्त्र तथा सेनाबल को रक्षा या विध्वंस का उपाय मानता है, तब तक आत्मशक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होता। द्रौपदी ने भी बाह्य शक्ति पर विश्वास करके जब तक रक्षा के लिए दूसरों की ओर देखा उसे कोई सहायता न मिली। भीम की गदा और अर्जुन के बाण भी काम न आए। अन्त में द्रौपदी ने बाह्य शक्ति से निराश होकर आत्मशक्ति की शरण ली। वह सब कुछ छोड़ कर प्रभु के ध्यान में लग गई।

दुःशासन ने अपनी सारी शक्ति लगा दी किन्तु वह द्रौपदी का चीर न खींच सका। उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे द्रौपदी में कोई महान् शक्ति कार्य कर रही हो। वह भयभीत सा होकर

खड़ा रह गया। दुर्योधन के पूछने पर उसने कहा-

भाई! मुझ से यह वस्त्र नहीं खींचा जा रहा है। अधिक जोर से खींचता हूँ तो ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कोई मेरा हाथ पकड़ कर खींच रहा है। इसके मुंह पर देखता हूँ तो आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। पता नहीं इसमें इतना वस्त्र कहाँ से आगया। मेरे हाथ काम नहीं कर रहे हैं। अब तो तुम आओ।

सारी सभा स्तब्ध रह गई। दुर्योधन ने अपनी जांघ उघाड़ी और कहा द्रौपदी! आओ यहाँ बैठो।

सभी का मस्तक लज्जा से नीचे झुक गया। भीष्म और द्रोण कुछ न बोल सके। भीम से यह दृश्य न देखा गया। उसने खड़े हो कर प्रतिज्ञा की-दुःशासन! दुर्योधन! यह दृश्य मेरी आँखें नहीं देख सकतीं। अभी तो हम लाचार हैं, प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण कुछ नहीं कर सकते किन्तु युद्ध में अगर मैं दुःशासन के रक्त से द्रौपदी के इन केशों को न सींचूँ तथा दुर्योधन की इस जांघ को चूर चूर न करूँ तो मेरा नाम भीम नहीं है।

सारी सभा में भय छा गया। भीम के बल से सभी कौरव परिचित थे। उसकी प्रतिज्ञा भयङ्कर थी। इतने में धृतराष्ट्र और गान्धारी वहाँ आए। धृतराष्ट्र युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के पिता पाण्डु के बड़े भाई थे। वे जन्मान्ध थे, इस लिए गद्दी पाण्डु को मिली। धृतराष्ट्र को अपनी सन्तान पर प्रेम था। वे चाहते थे कि गद्दी उनके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को मिले, किन्तु लोकलाज से डरते थे। सभा में आते ही उन्होंने द्रौपदी को अपने पास बुला कर सान्त्वना दी। दुःशासन और दुर्योधन को उलहना दिया। अपने पुत्र द्वारा दिए गए इस कष्ट के लिए द्रौपदी से कुछ मांगने को कहा।

द्रौपदी बोली- मुझे और कुछ नहीं चाहिए मैं तो सिर्फ पाँचों पाण्डवों की मुक्ति चाहती हूँ।

भीम को यह बात मालूम पड़ी। भयंकर रूप बना कर वह श्मशान में गया, अर्थी ले जाने वाले लोगों को मार भगाया और द्रौपदी को बन्धन से मुक्त कर दिया।

तेरहवाँ वर्ष पूरा होने पर पाँचों पाण्डव प्रकट हुए। विराट राजा और उसकी रानी ने सभी से क्षमा मांगी। द्रौपदी को दिए हुए दुःख के लिए रानी ने पश्चात्ताप किया।

पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके थे। शर्त के अनुसार अब राज्य उन्हें वापिस मिल जाना चाहिए था किन्तु दुर्योधन की नीयत पहले से ही बिगड़ चुकी थी। इतने साल राज्य करते करते उसने बड़े बड़े योद्धाओं को अपनी तरफ मिला लिया था। द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा वगैरह बड़े बड़े महारथी उसके पक्ष में होगए थे। राजा होने के कारण सैनिक शक्ति भी उसने बहुत इकट्ठी कर ली थी। उसे अपनी विजय पर विश्वास था। वह सोचता था, पाण्डव इतने दिनों से वन में निवास कर रहे हैं फिर मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं। इन सब बातों को सोच कर उसने राज्य वापिस करने से इन्कार कर दिया।

पाण्डवों को अपने बल पर विश्वास था। दुर्योधन द्वारा किया गया अपमान भी उनके मन में खटक रहा था। इस लिए वे युद्ध के लिए तैयार होगए, किन्तु युधिष्ठिर शान्तिप्रिय थे। वे चाहते थे जहाँ तक हो सके युद्ध को टालना चाहिए। दुर्योधन की इस मनोवृत्ति को देख कर उन्होंने सोचा—यदि अपनी आजीविका के लिए हम लोगों को सिर्फ पाँच गाँव मिल जायँ तो भी गुजारा हो सकता है। यदि इतने पर भी दुर्योधन मान जाय तो रक्तपात रुक सकता है।

श्रीकृष्ण भी जहाँ तक हो सके, शान्ति को कायम रखना चाहते थे। युधिष्ठिर ने अपनी बात श्रीकृष्ण के सामने रक्खी और उन्हीं पर सन्धि का सारा भार डाल दिया।

द्रौपदी को युधिष्ठिर की यह बात अच्छी न लगी। दुःशासन द्वारा किया गया अपमान उसके हृदय में काँटे की तरह चुभ रहा था। वह उसका बदला लेना चाहती थी। अपने खुले हुए केशों को हाथ में लेकर द्रौपदी श्रीकृष्ण से कहने लगी— प्रभो! आप सन्धि के लिए जारहे हैं। विशाल साम्राज्य के बदले पाँच गाँव देकर कौन सन्धि न करेगा? उसमें भी जब सन्धि कराने वाले आप सरीखे महापुरुष हों। आपने हमारे भरण पोषण के लिए पाँच गाँवों को पर्याप्त मान कर शान्ति रखना उचित समझा है, किन्तु मैं गाँवों की भूखी नहीं हूँ। जंगल में रह कर भी मैं अपने दिन प्रसन्नतापूर्वक काट सकती हूँ। मुझे साम्राज्य की परवाह नहीं है। मैं तो अपने इन केशों के अपमान का बदला चाहती हूँ। जिस समय दुष्ट दुःशासन ने इन्हें खींचा था, मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक ये केश उसके रक्त से न सींचे जाएंगे तब तक मैं इन्हें न बाँधूँगी। क्या मेरे ये केश खुले ही रह जाएंगे? क्या एक महिला का अपमान आपके लिये कोई महत्त्व नहीं रखता? भीम ने दुःशासन का वध और दुर्योधन की जंघा चूर चूर करने की प्रतिज्ञा की है। क्या उसकी प्रतिज्ञा अपूर्ण ही रह जायगी?

दुर्योधन ने हमारे साथ क्या नहीं किया? जहर देकर मार डालने का प्रयत्न किया, लाख के घर में जला देना चाहा, दुर्वासा मुनि से शाप दिलाने की कोशिश की, हमारा जगह जगह अपमान किया, मेरी लाज छीनने में भी कसर नहीं रक्खी। वनवास तथा गुप्तवास के बाद शर्त के अनुसार हमें सारा साम्राज्य मिलना चाहिए उसके बदले आप पाँच गाँव लेकर सन्धि करने जा रहे हैं, क्या यह अन्याय का पोषण नहीं है? क्या यह पापी दुर्योधन के लिए आप का पक्षपात नहीं है? क्या हमारे अपमानों का यही बदला है?

द्रौपदी की वक्तृता सुन कर सभी लोग दंग रह गए। उन्हें ऐसा

की बातें करेंगे। द्रौपदी की आँखें क्रोध से लाल हो गई। उस में क्षत्रियाणी का खून उबलने लगा।

युधिष्ठिर– द्रौपदी! मुझे भी ये सारी बातें याद हैं। फिर भी अभी एक वर्ष की देर है। हमें अज्ञातवास करना है। बाद में देखा जाएगा। फिर भी मैं कहता हूँ कि यदि उसे सच्चे हृदय से प्रेम-पूर्वक समझाया जाय तो वह अब भी मान सकता है। उसका हृदय परिवर्तित हो जाएगा।

द्रौपदी– हाँ, हाँ! आप समझा कर देखिए। मैं तो युद्ध के सिवाय कुछ नहीं चाहती।

युधिष्ठिर सत्यवादी थे। अहिंसा और सत्य पर उनका दृढ़ विश्वास था। उनका विचार था कि इन दोनों में अनन्त शक्ति है। मनुष्य या पशु कोई कितना भी क्रूर हो किन्तु इन दोनों के सामने उसे झुकना ही पड़ता है। द्रौपदी का विश्वास था–विष की औषधि विष होता है। हिंसक तथा क्रूर व्यक्ति अहिंसा से नहीं समझाया जा सकता। दुष्ट व्यक्ति में जो बुरी भावना उठती है तथा उसके द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों को जिस वेग के साथ नुकसान पहुँचाना चाहता है उसका प्रतिकार केवल हिंसा ही है। एक बार उसके वेग को हिंसा द्वारा कम कर देने के बाद उपदेश या अहिंसा काम कर सकते हैं।

द्रौपदी और युधिष्ठिर अपने अपने विचारों पर दृढ़ थे।

वनवास के बारह साल बीत गए। गुप्तवास का तेरहवाँ साल बिताने के लिये पाण्डवों ने भिन्न भिन्न प्रकार के वेश पहिने। विराट नगर के श्मशान में आकर उन्होंने आपस में विचार किया। अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष एक वृक्ष की शाखा के साथ इस प्रकार बाँध दिया जिससे दिखाई न पड़े। सभी ने एक एक दिन के अन्तर से नगर में जाकर नौकरी कर ली।

युधिष्ठिर ने अपना नाम कंक रक्खा और राजा के पुरोहित-

पने की नौकरी कर ली। भीम ने वल्लभ के नाम से रसोइए की, अर्जुन ने बृहन्नला के नाम से राजा के अन्तःपुर में नृत्य सिखाने की, नकुल और सहदेव ने अश्वपालक और गोपालक की तथा द्रौपदी ने सैरन्ध्री के नाम से रानी के दासीपने की नौकरी कर ली। वे अपने गुप्तवास का समय बिताने लगे।

रानी का भाई कीचक बहुत दुष्ट और दुराचारी था। वह द्रौपदी को बहुत तंग किया करता था। एक बार द्रौपदी भीम के पास गई और उसके पूछने पर कहने लगी—

रानी का भाई कीचक मेरे पीछे पड़ा है। एक बार भरी सभा में उसने मेरे लात मारी। युधिष्ठिर महाराज तो क्षमा के सागर ठहरे। उन्होंने कहा—भद्रे! तुम्हारी रक्षा पाँच गन्धर्व करेंगे। अब तो कीचक बुरी तरह पीछे पड़ गया है। रानी भी उसे साथ दे रही है, बार बार मुझे उसके पास भेजती है।

भीम—तुम उसे किसी स्थान पर मिलने के लिए बुलाओ।

द्रौपदी—कल रात को नई नृत्यशाला में मिलने के लिए उसे कहूँगी किन्तु भूल न हो, नहीं तो बहुत बुरा होगा।

भीम—भूल कैसे हो सकती है? तुम्हारे स्थान पर मैं सो जाऊँगा और उसके आते ही सारा काम पूरा कर दूँगा।

दूसरे दिन निश्चित समय पर कीचक नई नृत्यशाला में गया। सोए हुए व्यक्ति को सैरन्ध्री समझ कर उसके पास गया। आलिंगन करने के लिए झुका। भीम ने उसे अपनी भुजाओं में कस कर ऐसा दबाया कि वह निर्जीव होकर वहीं गिर पड़ा।

कीचक की मृत्यु का समाचार सारे शहर में फैल गया। रानी ने समझा, यह काम सैरन्ध्री के गन्धर्वों ने किया है। उसने सैरन्ध्री को कीचक के साथ जला डालने का निश्चय किया और कीचक की अर्थी के साथ उसे बाँध दी।

'तथास्तु' कह कर धृतराष्ट्र ने सभी पाण्डवों को दासपने से मुक्त कर दिया।

दुर्योधन से यह न देखा गया। उसने दुबारा जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को आमन्त्रित किया। हारा हुआ जुआरी दुगुना खेलता है इसी लोकोक्ति के अनुसार युधिष्ठिर फिर तैयार होगए।

इस बार यह शर्त रक्खी गई कि जो हारे वह बारह वर्ष वन में रहे और एक वर्ष गुप्तवास करे। यदि गुप्तवास में उसका पता लग जाय तो फिर बारह वर्ष वन में रहे।

भविष्य में होने वाली घटना के लिए कारणसामग्री पहले से तैयार होजाती है। महाभारत के महायुद्ध में जो भीषण नरसंहार होने वाला था, उसकी भूमिका पहले से तैयार हो रही थी। शकुनि के पासे सीधे पड़े। युधिष्ठिर हार गए। उन्हें बारह वर्ष का वन-वास तथा एक वर्ष का गुप्तवास प्राप्त हुआ। द्रौपदी और पाँचों पाण्डवों ने वन की ओर प्रस्थान किया। वे झोंपड़ी बना कर घोर जंगल में रहने लगे।

एक दिन की बात है। युधिष्ठिर अपनी झोंपड़ी में बैठे थे। बाकी चारों भाई जंगल में फल फूल लाने गए हुए थे। पास ही द्रौपदी बैठी थी। बातचीत के सिलसिले में युधिष्ठिर ने लम्बी साँस छोड़ी। द्रौपदी ने आग्रहपूर्वक निःश्वास का कारण पूछा। बहुत आग्रह होने पर युधिष्ठिर ने कहा- द्रौपदी! मुझे स्वयं कोई दुःख नहीं है। दुःख तो मुझे तुम्हें देख कर हो रहा है। तुम्हारे सरीखी कोमल राजकुमारी महलों को छोड़ कर वन में भटक रही है, यही देख कर मुझे कष्ट हो रहा है।

द्रौपदी बोली- महाराज! मालूम पड़ता है मुझे अभी तक आप ने नहीं पहिचाना। जहाँ आप हैं वहाँ मुझे सुख ही सुख है। आप के सुख में मेरा सुख है और दुःख में दुःख। विवाह के बाद पहली

रात मैंने कुम्हार के घर में आप सभी के चरणों में सोकर बिताई थी। उस समय मुझे सुहागरात से कम आनन्द न हुआ था। इस लिए मेरी बात तो छोड़िए। अपने चारों भाइओं के विषय में विचार कीजिए। इन्हीं के लिए आप बन्धन में फँसे। इन्हीं के लिए आप ने यज्ञ किया और इन्हीं के लिए आप इन्द्रप्रस्थ के राजा बने। जिन से शत्रु थर थर काँपते हैं ऐसे आपके भाई पेट भरने के लिए जंगलों में रखड़ रहे हैं। क्या इस बात का आप को खयाल है? कभी आपको इस बात का विचार भी आता है?

युधिष्ठिर– आता तो है किन्तु–

द्रौपदी– नहीं, नहीं, यह विचार आप को नहीं आता। भरे दरबार में आपने अपनी स्त्री को जुए की बाजी पर रक्खा। आप की आँखों के सामने उसके बाल खींचे गए, कपड़े खींच कर उसे नंगी करने का प्रयत्न किया गया। उसे अपमानित किया गया। हम को शाप दिलाने की इच्छा से दुर्वासा ऋषि को बड़े परिवार के साथ यहाँ भेजा गया। दुर्योधन का बहनोई मुझे यहाँ से उठा ले गया। लाख का घर बना कर हम सब को जला डालने का प्रयत्न किया गया। फिर भी आप को दया आ रही है। आप का मन दुर्योधन को क्षमा करने का हो रहा है। महाराज! मैं उन सब बातों को नहीं भूल सकती। दुःशासन के द्वारा किया गया अपमान मेरे हृदय में काँटे के समान चुभ रहा है। सच्चे हृदय से समझाने पर भी वह नहीं मानेगा। युद्ध के बिना मैं भी नहीं मान सकती। आप की क्षमा क्षमा नहीं है। यह तो कायरता है। क्षत्रियों में ऐसी क्षमा नहीं होती। फिर भी यदि आप इस कायरता पूर्ण क्षमा को ही धारण करना चाहते हैं तो स्पष्ट कह दीजिए। आप संन्यास धारण कर लीजिए। हम शत्रुओं से अपने आप निपट लेंगे। पहले उनका संहार करके राज्य प्राप्त करेंगे, फिर आप के पास आकर संन्यास

मालूम पड़ने लगा जैसे उसके शरीर में कोई देवी उतर आई हो। सब के सब युद्ध के लिए उत्तेजित हो उठे। पाँच गाँव लेकर सन्धि करना उन्हें अन्याय मालूम पड़ने लगा।

श्रीकृष्ण द्रौपदी की बातों को धैर्यपूर्वक सुनते रहे। अन्त में कहने लगे— द्रौपदी! तुमने जो बातें कही हैं वे अक्षरशः सत्य हैं। तुम्हारे साथ कौरवों ने जो दुर्व्यवहार किया है उसका बदला युद्ध के सिवाय कुछ नहीं है। सारी दुनिया ऐसा ही करती है। किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि अहिंसा में कितनी शक्ति है। हिंसा पाशविक बल है। क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता? सभी शास्त्र हिंसा की अपेक्षा अहिंसा में अनन्तगुणी शक्ति मानते हैं। मैं इस सत्य का प्रयोग करके देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ तुम दुनिया के सामने यह आदर्श उपस्थित करो कि अहिंसा हिंसा को किस प्रकार दबा सकती है। महाराज युधिष्ठिर का भी यही कहना है।

तुम्हारी पुरानी घटनाओं में सब जगह अहिंसा की जीत हुई है। दुःशासन ने तुम्हें अपमानित करने का प्रयत्न किया। द्रौपदी! तुम्हीं बताओ इस में हार किस की हुई? दुःशासन की या तुम्हारी? वास्तव में पतन किसका हुआ, उसका या तुम्हारा? यदि उस समय शस्त्र से काम लिया जाता तो पाण्डव प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो जाते। ऐसी दशा में पाण्डवों का उज्ज्वल यश मलिन हो जाता। लाक्षागृह और दूसरी सभी घटनाओं में तुम लोगों ने शान्ति से काम लिया और अहिंसा द्वारा विजय प्राप्त की। वह विजय सदा के लिए अमर रहेगी और संसार को कल्याण का मार्ग बताएगी। मैं चाहता हूँ तुम उसी प्रकार की विजय फिर प्राप्त करो। खून खराबी द्वारा उस विजय को मलिन न बनाना चाहिए।

द्रौपदी! तुम इन केशों को दिखा रही हो। ये केश तो भौतिक वस्तु हैं। थोड़े दिनों बाद अपने आप मिट्टी में मिल जाएंगे। इन

का लोच करके भी तुम अपनी प्रतिज्ञा से छुटकारा पा सकती हो। किन्तु अहिंसा धर्म के जिस महान् आदर्श को तुमने अब तक दुनिया के सामने रक्खा है उसे मलिन न होने दो। उसके मलिन होने पर वह धब्बा मिटना असम्भव हो जाएगा। उस महान् आदर्श के सामने भीम की प्रतिज्ञा भी तुच्छ है।

तुम वीराङ्गना और वीर पुत्री हो। मैं तुम से सच्ची वीरता की आशा रखता हूँ। सच्ची वीरता धर्म की रक्षा में है, दूसरे के प्राण लेने में नहीं। द्रौपदी! जिस आत्मिक बल ने तुम्हारी चीरहरण के समय रक्षा की थी वही तुम्हारी प्रतिज्ञाओं को पूरा करेगा। वही तुम्हारे केशों के धब्बे को मिटाएगा। उसी पर निर्भर रहो। पाशविक बल की ओर ध्यान मत दो।

कृष्ण की बातों से द्रौपदी का आवेश कम हो गया। वह शान्त होकर बोली— आप प्रयत्न कीजिए अगर दुर्योधन मान जाय।

श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास गए किन्तु उसने उनकी एक भी बात नहीं मानी। उसे अपनी पाशविक शक्ति पर गर्व था। उसने उत्तर दिया— पाँच गाँव तो बहुत बड़ी चीज है। मैं सूई के अग्र-भाग जितनी जमीन भी बिना युद्ध नहीं दे सकता। श्रीकृष्ण द्वारा की गई सन्धि की बातचीत निष्फल हो गई। दुर्योधन की पैशाचिक लिप्सा सभी लोगों के सामने नग्न रूप में आ गई।

दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ हुईं। कुरुक्षेत्र के मैदान में अठारह अक्षौहिणी सेना खून की प्यासी बन कर आ डटी। महान् नरसंहार होने लगा। खून की नदियाँ बह चलीं। विजय पाण्डवों की हुई किन्तु वह विजय हार से भी बुरी थी। पाँच पाण्डवों को छोड़ कर सारे सैनिक युद्ध में काम आगए। मेदिनी लाशों से भर गई। देश की युवाशक्ति मटियामेट हो गई। लाखों विधवाओं, वृद्धों और बालकों के क्रन्दन से भरी इन्द्रप्रस्थपुरी में युधिष्ठिर

राजसिंहासन पर बैठे।

यह दृश्य देख कर द्रौपदी का हृदय दहल उठा। उसे विश्वास हो गया कि हिंसात्मक युद्ध में विजित और विजयी दोनों की हार है और अहिंसात्मक युद्ध में दोनों की विजय है। दोनों का कल्याण है। उस सूने राज्य में द्रौपदी का मन न लगा। शान्ति प्राप्त करने के लिए उसने दीक्षा ले ली। पाँचों पाण्डव भी संसार से विरक्त होकर मुनि बन गए।

शुद्ध संयम का आराधन करते हुए यथासमय समाधि पूर्वक काल करके पाँचों पाण्डव मोक्ष में गए। द्रौपदी पाँचवें ब्रह्मदेवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी और वहीं से मोक्ष जाएगी।

(६) कौशल्या

प्राचीन समय में कुशस्थल नाम का अति रमणीय एक नगर था। वहाँ राजा के सब गुणों से युक्त सुकोशल नाम का राजा न्याय नीति पूर्वक राज्य करता था। प्रजा को वह अपने पुत्र के समान समझता था इसी लिए प्रजा भी उसे हृदय से अपना राजा मानती थी। उसकी रानी का नाम अमृतप्रभा था। उसका स्वभाव बहुत कोमल और मधुर था। कुछ समय पश्चात् रानी की कुक्षि से एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम अपराजिता रक्खा गया। रूप लावण्य में वह अद्भुत थी। अपने माता पिता की इकलौती सन्तान होने के कारण वे उसे बहुत लाड प्यार करते थे। उसका लाड-प्यार वाला दूसरा नाम कौशल्या था। अनेक धायों की संरक्षणता में वह बढ़ने लगी। जब वह स्त्री की सब कलाओं में निपुण होकर युवावस्था को प्राप्त हुई तब माता पिता को उसके अनुरूप वर खोजने की चिन्ता पैदा हुई।

इधर अयोध्या नगरी के अन्दर राजा दशरथ राज्य कर रहे

थे। मातापिता के दीक्षा ले लेने के कारण राजा दशरथ बाल्यावस्था में ही राजसिंहासन पर बिठा दिये गये थे। जब वे युवावस्था को प्राप्त हुए और राज्य का कार्य स्वयं सम्भालने लगे तब उनका ध्यान अपने राज्य की वृद्धि करने की ओर गया। अपने अपूर्व पराक्रम से उन्होंने कई राजाओं को अपने अधीन कर लिया। एक समय उन्होंने कुशस्थल पर चढ़ाई की। राजा दशरथ की सेना के सामने राजा सुकोशल की सेना न ठहर सकी। अन्त में सुकोशल पराजित हो गया। राजा सुकोशल ने अपनी कन्या कौशल्या का विवाह राजा दशरथ के साथ कर दिया। इससे दोनों राजाओं का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गया। अयोध्या में आकर राजा दशरथ रानी कौशल्या के साथ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

मिथिला का राजा जनक और राजा दशरथ दोनों समवयस्क थे। एक समय वे दोनों उत्तरापथ की ओर गये। वहाँ कौतुक-मंगल नगर के राजा शुभमति की कन्या कैकयी का स्वयंवर हो रहा था। वे भी वहाँ पहुँचे। राजाओं के बीच में वे दोनों चन्द्र और सूर्य के समान शोभित हो रहे थे। वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर कैकयी प्रतिहारी के साथ स्वयंवर मण्डप में आई। वहाँ उपस्थित राजाओं को देखती हुई वह आगे बढ़ती गई। राजा दशरथ के पास आकर वह खड़ी होगई और वरमाला उनके गले में डाल दी। यह देख कर दूसरे राजाओं को बहुत बुरा लगा। जबर्दस्ती से कैकयी को छीन लेने के लिये वे युद्ध की तय्यारी करने लगे। राजा शुभमति और राजा दशरथ भी लड़ाई के लिये तय्यार हुए। राजा दशरथ के रथ में बैठ कर कैकयी उसका सारथी बनी। उस ने ऐसी चतुराई से रथ को हांकना शुरू किया जिससे राजा दशरथ की लगातार विजय होती गई। अन्त में सब राजाओं को परास्त कर राजा दशरथ ने कैकयी के साथ विवाह किया। प्रसन्न होकर

राजा दशरथ ने कैकयी से कहा– हे प्रिये! तुम्हारे सारथीपन के कारण ही मेरी विजय हुई है। मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर मांगो। कैकयी ने उत्तर दिया– स्वामिन्! समय आवेगा तब माँग लूँगी। अभी आप इसे अपने ही पास धरोहर की भाँति रखिए। इसके पश्चात् राजा दशरथ कैकयी को लेकर अपने नगर में चले आए। कुछ समय बाद उसने सर्वाङ्गसुन्दरी राजकुमारी सुमित्रा (मित्राभू, सुशीला) और सुप्रभा के साथ विवाह किया।

रानियों के साथ राजा दशरथ सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे। रानी कौशल्या में अनेक गुण थे। उसका स्वभाव बड़ा सीधा सादा और सरल था। सौतिया डाह तो उसके अन्दर नाम मात्र को भी न था। कैकयी, सुप्रभा और सुमित्रा को वह अपनी छोटी बहनें मान कर उनके साथ बड़े प्रेम का व्यवहार करती थी। सद्-गुणों के कारण राजा ने उसे पटरानी बना दिया।

एक समय रात्रि के पिछले पहर में कौशल्या ने बलदेव के जन्म सूचक चार महास्वप्न देखे। उसने अपने देखे हुए स्वप्न राजा को सुनाये। राजा ने कहा– प्रिये! तुम्हारी कुक्षि से एक महान् प्रतापी पुत्र का जन्म होगा। रानी अपने गर्भ का यत्न पूर्वक पालन करने लगी। गर्भस्थिति पूरी होने पर रानी ने पुण्डरीक कमल के समान वर्ण वाले पुत्र को जन्म दिया।

पुत्र जन्म से राजा दशरथ को अत्यन्त हर्ष हुआ। प्रजा खुशियाँ मनाने लगी। अनेक राजा विविध प्रकार की भेटें लेकर राजा दशरथ की सेवा में उपस्थित होने लगे। खजाने में पद्मा (लक्ष्मी) की बहुत वृद्धि हुई, इससे राजा दशरथ ने पुत्र का नाम पद्म रक्खा। लोगों में ये राम के नाम से प्रख्यात हुए। ये बलदेव थे।

कुछ समय पश्चात् रानी सुमित्रा ने एक रात्रि के शेष भाग में वसुदेव के जन्म सूचक सात महास्वप्न देखे। समय पूरा होने पर उसने

एक प्रतापी, तेजस्वी और पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म से राजा, रानी तथा प्रजा सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। राजा ने पुत्र का नाम नारायण रक्खा किन्तु लोगों में वह 'लक्ष्मण' इस नाम से प्रख्यात हुआ। ये दोनों भाई पृथ्वी पर चन्द्र और सूर्य के समान शोभित होने लगे।

इसके पश्चात् कैकयी की कुक्षि से भरत और सुप्रभा की कुक्षि से शत्रुघ्न ने जन्म लिया। योग्य समय पर कलाचार्य के पास सब कलाएं सीख कर चारों भाई कला में प्रवीण हो गये।

एक समय चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज अयोध्या में पधारे। राजा दशरथ उन्हें वन्दना नमस्कार करने के लिये गया। मुनि ने समयोचित धर्मदेशना दी। राजा ने अपने पूर्वभव के विषय में पूछा। मुनिराज ने राजा को उसका पूर्वभव कह सुनाया जिससे उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य सौंप कर दीक्षा लेने का निश्चय किया।

राम के राज्याभिषेक की बात सुन कर कैकयी के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसने स्वयंवर के समय दिये हुए वरदान को इस समय राजा से मांगा और कहा कि मेरे पुत्र भरत को राज्य मिले और राम को वनवास। इस दुःखद वरदान को सुन कर राजा को मूर्च्छा आ गई। जब राम को इस बात का पता लगा तो वे शीघ्र ही वहाँ आये। शीतल उपचारों से राजा की मूर्च्छा दूर कर उनकी आज्ञा से वन जाने को तय्यार हुए। सब से पहले वे माता कैकयी के पास आये। उसे प्रणाम कर वन जाने की आज्ञा माँगी। इसके पश्चात् वे माता कौशल्या के पास आये। वन जाने की बात सुन कर उनको अति दुःख हुआ किन्तु इस सारे प्रपंच को रचने वाली दासी मन्थरा पर और कठिन वरदान को माँगने वाली रानी कैकयी पर उन्होंने जरा भी क्रोध नहीं किया और न उनके प्रति

किसी प्रकार के कटुतापूर्ण शब्दों का प्रयोग ही किया। माता कौशल्या ने गम्भीरता और धैर्य पूर्वक राम को वन में जाने की अनुमति दी। पतिव्रता सीता भी राम के साथ वन को गई और लक्ष्मण भी उनके साथ वन को गया।

कौशल्या के हृदय में जितना स्नेह राम के लिये था उतना ही स्नेह लक्ष्मण और भरतादि के लिये भी था। सीता हरण के कारण रावण के साथ संग्राम करते हुए लक्ष्मण को शक्ति बाण लगा और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा यह खबर जब अयोध्या पहुँची तो रानी कौशल्या को बहुत दुःख हुआ। वह सोचने लगी राम! तुम लक्ष्मण के बिना वापिस अकेले कैसे आओगे? व्याकुल होती हुई सुमित्रा को उसने आश्वासन देकर धैर्य बंधाया। इतने में नारद ने आकर लक्ष्मण के स्वस्थ होने की खबर कौशल्या आदि रानियों को दी तब कहीं जाकर उनकी चिन्ता दूर हुई।

अपने पराक्रम से लंका पर विजय प्राप्त करके लक्ष्मण और सीता सहित राम वापिस अयोध्या में आये। भरत के अत्याग्रह से राम ने अयोध्या का राज्य स्वीकार किया।

रानी कौशल्या ने राम को वन में जाते देखा और लंका पर विजय प्राप्त कर वापिस लौटते हुए भी देखा। राम को वनवासी तपस्वी वेष में भी देखा और राज्य वैभव से युक्त राजसिंहासन पर बैठे हुए भी देखा। कौशल्या ने पति सुख भी देखा और पुत्र-वियोग के दुःख को भी सहन लिया। वह राजरानी भी बनी और राजमाता भी बनी। उसने संसार के सारे रंग देख लिये किन्तु उसे कहीं भी आत्मिक शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। संसार के प्रति उसे वैराग्य होगया। सांसारिक बंधनों को तोड़ कर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन कर सद्-गति को प्राप्त किया।

(७) मृगावती

मृगावती वैशाली के प्रसिद्ध महाराजा चेटक (चेड़ा) की पुत्री थी। उसकी एक बहिन का नाम पद्मावती था जो चम्पा के राजा दधिवाहन की रानी थी। सती पद्मावती ने भी अपने उज्ज्वल चरित्र द्वारा सोलह सतियों के पवित्र हार को सुशोभित किया है। उस का चरित्र आगे दिया जाएगा।

मृगावती की दूसरी बहिन का नाम त्रिशला था। जो महाराज सिद्धार्थ की रानी थी। उसी के गर्भ से चरम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। पद्मावती और त्रिशला के सिवाय मृगावती के चार बहनें और थीं।

मृगावती बहुत सुन्दर, धर्म परायण और गुणवती थी। उस का विवाह कौशाम्बी के महाराजा शतानीक के साथ हुआ था। अपने गुणों के कारण वह उसकी पटरानी बन गई थी।

कौशाम्बी वाणिज्य, व्यवसाय और कला कौशल के लिए प्रसिद्ध थी। वहाँ बहुत से चित्रकार रहते थे।

एक बार कौशाम्बी का एक चित्रकार चित्रकला में अधिक प्रवीण होने के लिए सांकेतनपुर गया। वहाँ एक बुढ़िया चितेरन के घर ठहर गया। बुढ़िया का लड़का चित्रकला में बहुत निपुण था। कौशाम्बी का चित्रकार वहीं रह कर चित्रकला सीखने लगा।

एक बार बुढ़िया के घर राजपुरुष आए। वे उसके लड़के के नाम की चिट्ठी लाए थे। बुढ़िया उन्हें देख कर छाती और सिर कूटती हुई जोर जोर से रोने लगी। कौशाम्बी के चित्रकार ने उस से रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने कहा– बेटा ! यहाँ सुरप्रिय नाम के यक्ष का स्थान है। वहाँ प्रति वर्ष मेला भरता है। उस

मेले के दिन किसी न किसी चित्रकार को उस यक्ष का चित्र अवश्य बनाना पड़ता है। यदि चित्र में किसी प्रकार की त्रुटि रह जाय तो यक्ष चित्रकार के प्राण ले लेता है। यदि उस का चित्र बनाने के लिए कोई तैयार न हो तो यक्ष कुपित होकर नगर में उपद्रव मचाने लगता है। बहुत से लोगों को मार डालता है।

इस बात से डर कर बहुत से चितेरे नगर छोड़ कर भाग गए, फिर भी यक्ष का कोप कम नहीं हुआ। सांकेतनपुर में सभी लोग भयभीत रहने लगे। यह देख कर यक्ष को प्रसन्न करने के लिए राजा ने सिपाहियों को भेज कर चितेरों को फिर नगर में बुला लिया। मेले के दिन प्रत्येक चित्रकार के नाम की चिट्ठी घड़े में डाल कर एक कन्या द्वारा निकलवाई जाती है। जिसके नाम की चिट्ठी निकलती है उसी को यक्ष का चित्र बनाने के लिए जाना पड़ता है। आज मेले का दिन है। मेरे पुत्र के नाम की चिट्ठी निकली है। मेरा यह इकलौता बेटा है। इसी की कमाई से घर का निभाव हो रहा है। यह चिट्ठी यमराज के घर का निमन्त्रण है। इस वृद्धावस्था में इस पुत्र के बिना मेरा कौन सहारा है?

कौशाम्बी के चित्रकार ने कहा– माताजी! आप शोक मत कीजिए। यक्ष का चित्र बनाने के लिए आपके पुत्र के बदले मैं चला जाऊँगा। इस प्रकार उसने वृद्धा के शोक को दूर कर दिया। धैर्य, उत्साह और साहस पूर्वक वह पुलिस के साथ हो लिया। उस ने उसी समय अट्ठम तप का पच्चक्खाण कर लिया और चित्र बनाने के लिए केसर, कस्तूरी आदि महा सुगन्धित पदार्थों को साथ ले लिया। पवित्र होकर वह यक्ष के मन्दिर में पहुँचा। केसर, चन्दन, अगर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों के विविध रंग बना कर उस ने यक्ष का चित्र बनाया। फिर चित्र की पूजा करके एकाग्र चित्त से उसके सामने बैठ कर और हाथ जोड़ कर कहने लगा–

हे यक्षाधिराज! मैंने आप का चित्र बनाया है। उस में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो इस सेवक को क्षमा कीजिएगा। आप के सन्तोष से सभी का कल्याण है। नगर के सभी लोग आपकी प्रसन्नता चाहते हैं।

यक्ष चित्रकार की स्तुति से प्रसन्न हो गया और बोला– चित्रकार! मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ। अपना इच्छित वर मांगो।

चित्रकार ने कहा– यदि आप प्रसन्न हैं तो अब यहाँ के लोगों को अभयदान दे दीजिए। दया स्वर्ग और मोक्ष की जननी है।

चित्रकार का परोपकार से भरा हुआ कथन सुन कर यक्ष और भी प्रसन्न हो गया और बोला–आज से लेकर जीवन पर्यन्त मैं किसी जीव की हिंसा नहीं करूँगा। किन्तु यह वरदान तो तेरी सद्वृत्ति या परोपकार के लिए है। तुम अपने लिए कोई दूसरा वर मांगो।

चित्रकार ने उत्तर दिया– आपने मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर जीव हिंसा को बन्द कर दिया, यह बड़े हर्ष की बात है। यदि आप विशेष प्रसन्न हैं तो मैं दूसरा वर माँगता हूँ– आप अपने मन को आत्मकल्याण की ओर लगाइए।

यक्ष अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला– तुम्हारी बात मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु यह भी मेरे हित के लिए है। तुम अपने हित के लिए कुछ मांगो।

यक्ष के बार बार आग्रह करने पर चित्रकार ने कहा– यदि आप मेरे पर अत्यधिक प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि मैं किसी व्यक्ति या वस्तु के एक भाग को देख कर सारे का चित्र खींच सकूँ।

यक्ष ने 'तथाऽस्तु' कह कर उसकी प्रार्थना के अनुसार वर दे दिया। चित्रकार अपने अभीष्ट को प्राप्त कर बहुत खुश हुआ और अपने स्थान पर चला आया। उसके मुँह से सारा हाल सुन कर राजा और प्रजा को बड़ा हर्ष हुआ। सभी निर्भय होकर

आनन्द पूर्वक रहने लगे। चित्रकार अपनी कुशलता के कारण सब जगह प्रसिद्ध हो गया। उसकी कीर्ति दूर दूर तक फैल गई।

एक बार शतानीक ने अपनी चित्रशाला चित्रित करने के लिए उसी चित्रकार को बुलाया। राजा ने उसकी बहुत प्रशंसा की और अपनी चित्रशाला में विविध प्रकार के प्राणी, सुन्दर दृश्य तथा दूसरी वस्तुएं चित्रित करने के लिए कहा।

चित्रकार अपनी कारीगरी दिखाने लगा। सिंह, हाथी आदि प्राणी ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे वे अभी बोलेंगे। प्राकृतिक दृश्य ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे वास्तविक हों। सभी चित्र सजीव तथा भावपूर्ण थे।

एक बार रानी मृगावती अपने महल की खिड़की में बैठी हुई थी। उसका अंगूठा चित्रकार की नजरों में पड़ गया। यक्ष द्वारा प्राप्त हुए वरदान के कारण उसने सारी मृगावती का हूबहू चित्र बना दिया। चित्र बनाते समय उसकी पीछी से काले रंग का एक धब्बा चित्र की जांघ पर गिर पड़ा। चित्रकार ने उसे पोंछ दिया किन्तु फिर भी वहाँ काला चिह्न बना रहा। चित्रकार ने सोचा—मृगावती की जांघ पर सचमुच काला तिल होगा इसी लिए वरदान के कारण बार बार पोंछने पर भी यह दाग यहाँ से नहीं मिटता। यह चिह्न देखने वाले के दिल में सन्देह पैदा करने वाला है, किन्तु नहीं निकलने पर क्या किया जाय। इस चित्र को वस्त्र पहिना देने चाहिएं जिससे यह तिल ढक जाय। यह सोच कर काम को दूसरे दिन के लिए मुल्तवी करके वह अपने घर चला गया।

अचानक उसी समय महाराज शतानीक चित्रशाला देखने के लिए आए। अनेक प्रकार के सुन्दर और कलापूर्ण चित्रों को देख कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। चित्र देखते हुए वे मृगावती के वस्त्र रहित चित्र के पास आ पहुँचे। चित्र को देख कर उन्हें चित्रकार की कुशलता पर आश्चर्य होने लगा। अचानक उनका ध्यान

जंघा पर पड़े हुए तिल के निशान पर गया। राजा के मन में सन्देह हो गया। वे सोचने लगे— इस चित्रकार का मृगावती के साथ गुप्त सम्बन्ध होगा, नहीं तो वह इस तिल को कैसे जान सकता है। उसका अपराध बहुत बड़ा है, इसके लिए उसे मृत्यु दण्ड मिलना चाहिए। यह निश्चय करके राजा ने उसके लिए मृत्युदण्ड की आज्ञा दे दी।

चित्रकार ने क्षमा याचना करते हुए कहा— महाराज! मुझे यक्ष की तरफ से वरदान मिला हुआ है। यह बात सभी लोग जानते हैं। आप भी इससे अपरिचित न होंगे। उस वर के कारण मैं किसी वस्तु या व्यक्ति का एक अङ्ग देख कर पूरा चित्र बना सकता हूँ। मैंने महारानी का केवल एक अंगूठा देखा था, उसी से वर के कारण सारा चित्र खींच दिया। जंघा के दाग को निकालने के लिए मैंने कई बार प्रयत्न किया किन्तु वह न निकला। हार कर मैंने दूसरे दिन इस चित्र को कपड़े पहिनाने का निश्चय किया जिस से यह दाग ढक जाय। मैंने आप से सच्ची बात निवेदन कर दी है, अब आप जो चाहें कर सकते हैं। आप हमारे मालिक हैं।

राजा ने चित्रकार की परीक्षा के लिए उसे एक कुब्जा का केवल मुंह दिखा कर सारी का चित्र बनाने की आज्ञा दी। चित्रकार ने कुब्जा का हूबहू चित्र बना दिया। राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया। फिर भी उसने इस बात को अपना अपमान समझा कि चित्रकार ने रानी का चित्र उससे बिना पूछे इस प्रकार बनाया। इस लिए राजा ने यह कहते हुए कि भविष्य में यह किसी कुलवती महिला का चित्र न खींचने पावे, चित्रकार का अंगूठा काट लेने की आज्ञा दे दी।

बिना दोष के दण्डित होने के कारण चित्रकार को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने मन में बदला लेने का निश्चय किया।

धीरे धीरे बाएं हाथ से चित्र बनाने का अभ्यास कर लिया। इस के बाद उसने मृगावती का चित्र बनाया और उसे शतानीक के परम शत्रु अवन्ती के राजा चण्डप्रद्योतन के पास ले गया।

राजा चण्डप्रद्योतन उस सुन्दर चित्र को देख कर आश्चर्य में पड़ गया और चित्रकार से पूछने लगा- यह चित्र काल्पनिक है या वास्तव में इतनी सुन्दर स्त्री संसार में विद्यमान है? ऐसा भाग्यशाली पुरुष कौन है जिसे ऐसी सुन्दरी पत्नी रूप में प्राप्त हुई है।

चित्रकार ने उत्तर दिया-महाराज! यह चित्र काल्पनिक नहीं है। यह चित्र आपके शत्रु कौशाम्बी के राजा शतानीक की पटरानी मृगावती का है। महाराज! चित्र तो चित्र ही है। मृगावती का वास्तविक सौन्दर्य इससे हजारों गुणा अधिक है।

चित्रकार की बात सुनते ही राजा के हृदय में काम विकार जागृत हो गया। साथ में पुराना वैर भी ताजा हो गया। उसने मन में सोचा- ऐसी सुन्दरी तो मेरे महलों में शोभा देती है। शतानीक के पास उसका रहना उचित नहीं है। यह सोच कर अपने वज्रजंघ नामक दूत को बुलाया और मृगावती की मांगनी करने के लिए शतानीक के पास भेज दिया।

दूत कौशाम्बी पहुँचा। शतानीक के सामने जाकर उसने चण्डप्रद्योतन का सन्देश सुनाया- महाराज! हमारे महाराजा ने आपकी रानी मृगावती की मांगनी की है और कहलाया है- जैसे मणि शीशे के साथ शोभा नहीं देती उसी प्रकार मृगावती आपके साथ नहीं शोभती। इस लिए उसे शीघ्र मेरे अधीन कर दीजिए। मुकुट सिर पर ही शोभता है, पैर पर नहीं। यदि आप को अपने जीवन और राज्य की चिन्ता हो तो बिना हिचकिचाहट मृगावती को सौंप दीजिए।

दूत का वचन सुन कर शतानीक को बहुत क्रोध आया। उस

ने उत्तर दिया— तुम्हारा राजा महामूर्ख है जो लोकविरुद्ध मांगनी करता है। हमेशा कन्या की मांगनी होती है विवाहिता स्त्री नहीं मांगी जाती, इस लिए तुम्हारे राजा को जाकर कहना— तुम्हारे सरीखे पैर के समान नीच राजा के घर मुकुट जैसी मृगावती नहीं शोभती। वह तो हमारे सरीखे सिर के समान उत्तम राजाओं के अन्तःपुर में ही शोभती है। अगर तुम्हें अपने जीवन, धन और राज्य को सुरक्षित रखना हो तो मृगावती को प्राप्त करने का प्रयत्न मत करना। दूत का वध करना नीति विरुद्ध समझ कर शतानीक ने उसे अपमानित करके नगरी से बाहर निकलवा दिया।

दूत ने अवन्ती में पहुँच कर सारी बात कही। चण्डप्रद्योतन ने कुपित होकर बड़े बड़े चौदह राजाओं की सेना के साथ कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी। सेना ने शीघ्रता से कौशाम्बी पहुँच कर नगरी के चारों तरफ घेरा डाल दिया। राजा शतानीक भी शत्रु को अपने राज्य पर चढ़ाई करते देख कर तैयार होने लगा। उसने नगरी के द्वार बन्द कर दिए और भीतर रह कर लड़ना शुरू किया। शतानीक बहुत देर तक लड़ता रहा परन्तु चण्डप्रद्योतन की सेना बहुत बड़ी थी। सागर के समान उसकी विशाल सेना को देख कर शतानीक हिम्मत हार गया। डर के कारण उसे भयातिसार हो गया और अन्त में उसी रोग से उसकी मृत्यु हो गई।

अकस्मात् अपने पति का मरण जान कर मृगावती को बहुत दुःख हुआ। अपने शील की रक्षा के लिए उचित अवसर जान कर उस ने शोक को हृदय में दबा लिया और एक चाल चली। उसने चण्डप्रद्योतन को कहलाया— मेरे पति का आप के भय से देहान्त हो गया है। इस लिए लौकिक रीति के अनुसार मैं अभी शोक में हूँ। मेरा पुत्र उदयन कुमार अभी छोटा है। वह राज्य को नहीं सम्भाल सकता। इस लिए कुछ समय बाद जब उदयन

कुमार राज्य सम्भाल लेगा और मैं शोकमुक्त हो जाऊँगी तो स्वयं आपके पास चली आऊँगी। आप किसी बात के लिए मुझ पर अप्रसन्न न होइएगा। यदि आपने मेरी इस बात पर ध्यान न दिया और शोक की अवस्था में भी राज्य और मुझ पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया तो मुझे प्राण त्यागने पड़ेंगे। इससे आपका मनोरथ मिट्टी में मिल जाएगा। इस लिए लड़ाई बन्द करके आप अपने राज्य की ओर चले जाइये इसी में कल्याण है।

राजा ने मृगावती की बात मान ली और लड़ाई बन्द करके सेना सहित अवन्ती की ओर प्रस्थान कर दिया।

चण्डप्रद्योतन के लौट जाने पर मृगावती ने पति का मृत्यु संस्कार किया। कौशाम्बी के चारों ओर मजबूत दीवाल बनवाई जिससे शत्रु शीघ्र नगरी में न घुस सके। उदयनकुमार को अस्त्र शस्त्रों की शिक्षा दी। धीरे धीरे उसे राज्य का भार सम्भालने योग्य बना दिया।

चण्डप्रद्योतन अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए उत्कण्ठित था। कुछ वर्षों के बाद उसने मृगावती को बुलाने के लिए अपने सेवकों को भेजा। सेवकों ने कौशाम्बी में जाकर मृगावती को चण्डप्रद्योतन का सन्देश सुनाया। मृगावती ने उत्तर दिया- मैं तुम्हारे राजा को मन से भी नहीं चाहती। मैंने अपने शील की रक्षा के लिए युक्ति रची थी। महाराजा शतानीक की मृत्यु हो जाने से मैं आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी। किसी दूसरे पुरुष को पति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती। इस लिए तुम लोग वापिस जाकर अपने राजा से कह दो कि वह अपने पापपूर्ण विचारों को छोड़ दे।

सेवकों को इस बात से खुशी हुई कि मृगावती अपने शील पर दृढ़ है। उन्होंने अवन्ती में जाकर सारी बात राजा से कही। चण्डप्रद्योतन ने उसी समय कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी और नगरी के

पास पड़ाव डाल कर दूत द्वारा मृगावती को कहलाया– मृगावती ! यदि तुम अपना और अपने पुत्र का भला चाहती हो तो शीघ्र मेरी बात मानलो नहीं तो तुम्हारा राज्य नष्ट कर दिया जायगा ।

मृगावती ने आपत्ति को आई हुई जान कर नगरी के प्राकार पर सिपाहियों को तैनात कर दिया । सब प्रकार का प्रबन्ध करके वह अपने शील की रक्षा के लिए नवकार मन्त्र का जाप करने लगी।

उसी समय ग्रामानुग्राम विचर कर जगत् का कल्याण करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कौशाम्बी पधारे । नगरी के बाहर देवों ने समवसरण की रचना की । भगवान् के प्रभाव से आस पास के सभी प्राणी अपने वैर को भूल गए । राजा चण्ड-प्रद्योतन पर भी असर पड़ा । भगवान् का उपदेश सुनने के लिए वह समवसरण में आया । मृगावती को भी भगवान् के आगमन का समाचार जान कर बड़ी खुशी हुई। अपने पुत्र को साथ लेकर वह नगरी के बाहर भगवान् के दर्शनार्थ गई । वह भी धर्मोपदेश सुनने के लिए बैठ गई । भगवान् ने सभी के लिए हितकारक उप-देश देना शुरू किया ।

भगवान् के उपदेश से मृगावती ने उसी समय दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की । यह सुन कर चण्डप्रद्योतन को भी बड़ा हर्ष हुआ। उसने उदयन को कौशाम्बी के राजसिंहासन पर बैठा कर राज्या-भिषेक महोत्सव मनाया । मृगावती ने भी राजा को सदैव इसी प्रकार उदयन के ऊपर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखने का सन्देश दिया।

इस के बाद मृगावती ने भगवान् के पास दीक्षा धारण कर ली तथा महासती चन्दनबाला की आज्ञा में विचरने लगी ।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए कौशाम्बी पधारे। चन्दनबाला का भी अपनी शिष्याओं के साथ वहीं आगमन हुआ। एक दिन मृगावती अपनी गुरुआनी सती चन्दनबाला की आज्ञा

लेकर भगवान् के दर्शनार्थ गई। वापिस लौटते समय रास्ते में भीड़ होने के कारण उसे बहुत देर खड़ी रहना पड़ा। इतने में रात हो गई। मृगावती अंधेरा हो जाने पर उपाश्रय में पहुँची। वहाँ आकर उसने चन्दनबाला को वन्दना की। प्रवर्तिनी होने के कारण उसे उपालम्भ देते हुए चन्दनबाला ने कहा– साध्वियों को सूर्यास्त के बाद उपाश्रय के बाहर न रहना चाहिये।

मृगावती अपना दोष स्वीकार करके उसके लिये पश्चात्ताप करने लगी। समय होने पर चन्दनबाला तथा दूसरी साध्वियाँ अपने अपने स्थान पर सो गई, किन्तु मृगावती बैठी हुई पश्चात्ताप करती रही। धीरे धीरे उसके घाती कर्म नष्ट हो गए। उसे केवलज्ञान होगया।

अँधेरी रात थी। सब सतियाँ सोई हुई थीं। उसी समय मृगावती ने अपने ज्ञान द्वारा एक काला सांप देखा। वह चन्दनबाला के हाथ की तरफ आ रहा था। यह देख कर मृगावती ने चन्दनबाला के हाथ को उठा लिया। हाथ के छूए जाने से चन्दनबाला की नींद खुल गई। पूछने पर मृगावती ने सांप की बात कह दी और निद्राभंग करने के लिए क्षमा मांगी।

चन्दनबाला ने पूछा–अंधेरे में आपने साँप को कैसे देख लिया? मृगावती ने उत्तर दिया– आपकी कृपा से मेरे दोष नष्ट हो गए हैं, अतः ज्ञान कीज्योति प्रकट हुई है। चन्दनबाला– पूर्ण या अपूर्ण?

मृगावती–आपकी कृपा होने पर अपूर्णता कैसे रह सकती है?

चन्दनबाला– तब तो आपको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। बिना जाने मुझ से आशातना हुई है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

चन्दनबाला ने मृगावती को वन्दना की। केवली की आशातना के लिए वह पश्चात्ताप करने लगी। उसी समय उसके घाती कर्म नष्ट हो जाने से उसे भी केवलज्ञान होगया।

आयुष्य पूरी होने पर सती मृगावती सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुई।

(८) सुलसा

आज से लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। मगध देश में राजगृही नाम की विशाल नगरी थी। वहाँ श्रेणिक नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। उसके सुनन्दा नाम वाली भार्या से उत्पन्न हुआ अभयकुमार नामक पुत्र था। वह औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी रूप चारों बुद्धियों का निधान था। वही राजा का प्रधान मंत्री था। नगरी धन, धान्य आदि से पूर्ण तथा सुखी थी।

उसी नगरी में नाग नाम का रथिक रहता था। वह राजा श्रेणिक का सेवक था। उसके श्रेष्ठ गुणों वाली सुलसा नामक भार्या थी। नाग सारथी ने गुरु के समक्ष यह नियम कर लिया था कि मैं कभी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करूँगा। दोनों स्त्री पुरुष परस्पर प्रेमपूर्वक सुख से जीवन व्यतीत करते थे। सुलसा सम्यक्त्व में दृढ़ थी। उसे कभी क्रोध न आता था।

एक बार नाग रथिक ने किसी सेठ के पुत्रों को आंगन में खेलते हुए देखा। बच्चे देवकुमार के समान सुन्दर थे। उनके खेल से सारा आंगन हास्यमय हो रहा था। उन्हें देख कर नाग रथिक के मन में आया— पुत्र के विना घर सूना है। सब प्रकार का सुख होने पर भी सन्तान के विना फीका मालूम पड़ता है। इस प्रकार के विचारों से उसके हृदय में पुत्रप्राप्ति की प्रबल इच्छा जाग उठी। वह पुत्रप्राप्ति के लिए विविध प्रकार के उपाय सोचने लगा। इस के लिए वह मिथ्यादृष्टि देवों की आराधना करने लगा। सुलसा ने यह देख कर उससे कहा— प्राणनाथ! पुत्र, यश, धन आदि सभी वस्तुओं की प्राप्ति अपने अपने कर्मानुसार होती है। बाँधे हुए कर्म भोगने ही पड़ते हैं। इस में मनुष्य या देव कुछ नहीं कर सकते। मालूम पड़ता है, मेरे गर्भ से कोई सन्तान न होगी इस

लिए आप दूसरा विवाह कर लीजिए।

नाग सारथी ने उत्तर दिया– मुझे तुम्हारे ही पुत्र की आवश्यकता है। मैं दूसरा विवाह नहीं करना चाहता।

सुलसा ने कहा– सन्तान, धन आदि किसी वस्तु का अभाव अन्तराय कर्म के उदय से होता है। अन्तराय को दूर करने के लिए हमें दान, तप, पच्चक्खाण आदि धर्म कार्य करने चाहिएं। धर्म से सभी बातों की प्राप्ति होती है। धर्म ही कल्पवृक्ष है। धर्म ही चिन्तामणि रत्न तथा कामधेनु है। भोले प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के देने वाले धर्म को छोड़ कर इधर उधर भटकते हैं। उत्तम कुल, दीर्घ आयुष्य, स्वस्थ शरीर, पूर्ण इन्द्रियाँ, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति, परस्पर प्रेम, गुणों का अनुराग, उत्तम सन्तान तथा ऐश्वर्य आदि सभी बातें धर्म से प्राप्त होती हैं। घर में लक्ष्मी, बाहु में बल, हाथों द्वारा दान, देह में सुन्दरता, मुंह में अमृत के समान मीठी वाणी तथा कीर्ति आदि सभी गुणों का कारण धर्म है।

किसी वस्तु के अपने पास न होने पर खेद न करना चाहिए। उसकी प्राप्ति के लिए शुभ कर्म तथा पुण्य उपार्जन करना चाहिये।

सुलसा की बात सुन कर नाग सारथी की भी धर्म की ओर विशेष रुचि हो गई। दोनों उसी दिन से दान, त्याग और तपस्या आदि धर्म कार्यों में विशेष अनुराग रखने लगे।

एक बार देवों की सभा लगी हुई थी। मनुष्यलोक की बात चली। शक्रेन्द्र ने सुलसा की प्रशंसा करते हुए कहा–भरतखण्ड के मगध देश की राजगृही नगरी में नाग नाम का सारथी रहता है। उसकी भार्या सुलसा को कभी क्रोध नहीं आता। वह धर्म में ऐसी दृढ़ है कि देव दानव या मनुष्य कोई भी उसे विचलित करने में समर्थ नहीं है। इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा को सुन कर हरिणगवेषी देव सुलसा की परीक्षा करने के लिए मृत्युलोक में आया। दो

साधुओं का रूप बना कर वह सुलसा के घर गया। साधुओं को देख कर सुलसा बहुत हर्षित हुई। मन में सोचने लगी– मेरा अहो-भाग्य है कि निर्ग्रन्थ साधु भिक्षा के लिए मेरे घर पधारे हैं। साधुओं को वन्दना नमस्कार करने के बाद सुलसा ने हाथ जोड़ कर विनति की– मुनिराज! आप के पधारने से मेरा घर पवित्र हुआ है। आप को जिस वस्तु की चाहना हो फरमाइए।

मुनि ने उत्तर दिया– तुम्हारे घर में लक्षपाक तेल है। उग्र विहार के कारण बहुत से साधु ग्लान हो गए हैं। उनके उपचार के लिए इसकी आवश्यकता है।

'लाती हूँ' कह कर हर्षित होती हुई सुलसा तेल लाने के लिए अन्दर गई, जैसे ही वह ऊपर रक्खे तेल के भाजन को उतारने लगी कि देवमाया के प्रभाव से वह हाथ से फिसल कर नीचे गिर पड़ा। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा भाजन भी नीचे गिर कर फूट गया।

इतना नुकसान होने पर भी सुलसा के मन में बिल्कुल खेद नहीं हुआ। बाहर आकर उसने सारा हाल साधुजी से कहा। साधुवेषधारी देव प्रसन्न हो गया। उसने अपने असली रूप में प्रकट होकर सुलसा से कहा– शक्रेन्द्र ने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी, वास्तव में तुम वैसी ही हो। मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए साधु का वेष बनाया था। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो मांगो।

सुलसा ने उत्तर दिया– आप मेरे हृदय की बात जानते ही हैं, फिर मुझे कहने की क्या आवश्यकता है?

देव ने ज्ञान द्वारा उसके पुत्रप्राप्ति रूप मनोरथ को जान कर सुलसा को बत्तीस गोलियाँ दीं और कहा– एक एक गोली खाती जाना। इनके प्रभाव से तुम्हें बत्तीस पुत्रों की प्राप्ति होगी। फिर कभी जब आवश्यकता पड़े मेरा स्मरण करना, मैं उसी समय उपस्थित हो जाऊँगा। यह कह कर देव अन्तर्धान हो गया।

गोलियाँ खाने से पहले सुलसा ने सोचा– मैं बत्तीस पुत्रों का क्या करूँगी ? यदि शुभ लक्षणों वाला एक ही पुत्र हो तो वही घर को आनन्द से भर देता है। अकेला चाँद रात्रि को प्रकाशित कर देता है किन्तु अनगिनत तारों से कुछ नहीं होता। इसी प्रकार एक ही गुणी पुत्र वंश को उज्ज्वल बना देता है, निर्गुण बहुत से पुत्र भी कुछ नहीं कर सकते। अधिक पुत्रों के होने से धर्मकार्य में भी बाधा पड़ती है। यदि मेरे बत्तीस लक्षणों वाला एक ही पुत्र उत्पन्न हो तो बहुत अच्छा है। यह सोच कर उसने सभी गोलियाँ एक साथ खा लीं। उसके प्रभाव से सुलसा के बत्तीस गर्भ रह गए और धीरे धीरे बढ़ने लगे। सुलसा के उदर में भयङ्कर वेदना होने लगी। उस असह्य वेदना की शान्ति के लिए सुलसा ने हरिणगवेषी देव का स्मरण किया। देव ने प्रकट होकर सुलसा से कहा तुम्हें एक एक गोली खानी चाहिए थी। बत्तीस गोलियों को एक साथ खाने से तुम्हारे एक साथ बत्तीस पुत्रों का जन्म होगा। इन में से किसी एक की मृत्यु होने पर सभी मर जाएंगे। यदि तुम अलग अलग बत्तीस गोलियाँ खाती तो अलग अलग बत्तीस पुत्रों को जन्म देती।

सुलसा ने उत्तर दिया– प्रत्येक प्राणी को अपने किए हुए कर्म भोगने ही पड़ते हैं। आपने तो अच्छा ही किया था किन्तु अशुभ कर्मोदय के कारण मुझ से गल्ती हो गई। यदि आप इस वेदना को शान्त कर सकते हों तो प्रयत्न कीजिए नहीं तो मुझे बाँधे हुए कर्म भोगने ही पड़ेंगे।

हरिणगवेषी देव ने सुलसा की वेदना को शान्त कर दिया। समय पूरा होने पर उसने शुभ लक्षणों वाले बत्तीस पुत्रों को जन्म दिया। बड़े धूमधाम से पुत्रों का जन्म महोत्सव मनाया गया। बारहवें दिन सभी के अलग अलग नाम रक्खे गए।

पाँच पाँच धायमाताओं की देखरेख में सभी पुत्र धीरे धीरे बढ़ने लगे। नाग रथिक का घर पुत्रों के मधुर शब्द, सरल हँसी तथा बालक्रीडाओं से भर गया। सभी बालक एक से एक बढ़ कर सुन्दर थे। उन्हें देख कर माता पिता के हर्ष की सीमा न रही। योग्य अवस्था होने पर सभी को धर्म, कर्म और शस्त्र सम्बन्धी शिक्षा दी गई। सभी कुमार पुरुष की कलाओं में प्रवीण हो गए और राजा श्रेणिक की नौकरी करने लगे। युवा अवस्था प्राप्त होने पर नाग रथिक ने कुलीन और गुणवती कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया।

एक बार राजा श्रेणिक के पास कोई तापसी (संन्यासिनी) एक चित्र लाई। वह चित्र वैशाली के राजा चेटक की सुज्येष्ठा नामक पुत्री का था। उसे देख कर श्रेणिक के मन में उससे विवाह करने की इच्छा हुई। पिता की इच्छा पूरी करने के लिए अभय कुमार वणिक का वेश बना कर वैशाली में गया। वहाँ जाकर राजमहल के समीप दुकान कर ली। उसकी दुकान पर सुज्येष्ठा की एक दासी सुगन्धित वस्तुओं को खरीदने के लिए आने लगी। अभयकुमार ने एक पट पर श्रेणिक का चित्र बना रक्खा था। जिस समय दासी दुकान पर आती वह उस चित्र की पूजा करने लगता। एक बार दासी ने पूछा—यह किस का चित्र है ?

मैं यह नहीं बता सकता, अभयकुमार ने उत्तर दिया। दासी के बहुत आग्रहपूर्वक पूछने पर अभयकुमार ने कहा—यह चित्र राजा श्रेणिक का है।

दासी ने सारी बात सुज्येष्ठा से कही। सुज्येष्ठा ने दासी से कहा ऐसा प्रयत्न करो जिससे इस राजा के साथ मेरा विवाह हो जाय। दासी ने जाकर यह बात अभयकुमार से कही। इस पर अभय कुमार ने एक सुरंग तैयार कराई और श्रेणिक महाराज को कह-

लाया—चैत्र शुक्ला द्वादशी के दिन इस सुरंग के द्वारा आप यहाँ आजाइएगा। सुज्येष्ठा को भी इस बात की खबर कर दी कि श्रेणिक राजा द्वादशी के दिन वैशाली में आएंगे।

उसी दिन श्रेणिक आया। सुज्येष्ठा उसके साथ जाने के लिए तैयार होने लगी। इतने में उसकी छोटी बहिन चेलणा ने कहा— मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी और श्रेणिक के साथ विवाह करूँगी। दोनों बहिनें तैयार होकर सुरंग के मुँह पर आई। वहाँ आकर सुज्येष्ठा बोली— मैं अपना रत्नों का पिटारा भूल आई हूँ। मैं उसे लेने जाती हूँ। मेरे आने तक तुम यहीं ठहरना। यह कह कर वह रत्नकरण्ड लाने वापिस चली गई। इतने में श्रेणिक वहाँ आ पहुँचा। वह सुलसा के बत्तीस पुत्रों के साथ वहाँ आया था। सुरंग के द्वार पर खड़ी हुई चेलणा को सुज्येष्ठा समझ कर श्रेणिक ने उसे रथ पर बिठा लिया और शीघ्रता से राजगृही की ओर प्रस्थान कर दिया।

इतने में सुज्येष्ठा आई। सुरंग के द्वार पर किसी को न देख कर वह समझ गई कि चेलणा अकेली चली गई है। उसने चिल्लाना शुरू किया। चेड़ा महाराज को खबर पहुँची। पुत्री का हरण हुआ जान कर उन्होंने पीछा किया। सुलसा के पुत्रों ने चेड़ा राजा की सेना को मार्ग ही में रोक लिया। युद्ध शुरू हुआ। उस में सुलसा का एक पुत्र मारा गया। एक की मृत्यु से बाकी बचे हुए इकतीस पुत्रों की भी मृत्यु हो गई। श्रेणिक चेलणा को लेकर राजगृही के समीप पहुँचा। राजा ने उसे सुज्येष्ठा के नाम से बुलाया तो चेलणा ने कहा— मैं सुज्येष्ठा नहीं हूँ। मैं तो उसकी छोटी बहिन चेलणा हूँ। राजा को अपनी भूल का पता लगा। बड़े समारोह के साथ श्रेणिक और चेलणा का विवाह हो गया।

सुलसा को अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुन कर बड़ा दुःख हुआ। वह विलाप करने लगी। एक साथ बत्तीस पुत्रों की

मृत्यु उसके लिए असह्य हो गई। उस का रुदन सुन कर आस पास के लोग भी शोक करने लगे। उस समय अभयकुमार नागरथिक के घर आया और सुलसा को सान्त्वना देने के लिए कहने लगा– सुलसे! धर्म पर तुम्हारी दृढ़ श्रद्धा है। तुम उसके मर्म को पहिचानती हो। अविवेकी पुरुष के समान विलाप करना तुम्हें शोभा नहीं देता। यह संसार इन्द्रजाल के समान है। इन्द्रधनुष के समान नश्वर है। हाथी के कानों के समान चपल है। सन्ध्या राग के समान अस्थिर है। कमलपत्र पर पड़ी हुई बूँद के समान क्षणिक है। मृगतृष्णा के समान मिथ्या है। यहाँ जो आया है वह अवश्य जायगा। नष्ट होने वाली वस्तु के लिए शोक करना वृथा है। अभयकुमार के इस प्रकार के वचनों को सुन कर सुलसा और नाग रथिक का शोक कुछ कम हो गया। संसार की विचित्रता को समझ कर उन्होंने दुःख करना छोड़ दिया।

कुछ दिनों बाद भगवान् महावीर चम्पा नगरी में पधारे। नगरी के बाहर देवों ने समवसरण की रचना की। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। देशना के अन्त में अम्बड़ नाम का विद्याधारी श्रावक खड़ा हुआ। विद्या के बल से वह कई प्रकार के रूप पलट सकता था। वह राजगृही का रहने वाला था। उसने कहा–प्रभो! आपके उपदेश से मेरा जन्म सफल होगया। अब मैं राजगृही जा रहा हूँ।

भगवान् ने फरमाया – राजगृही में सुलसा नाम वाली श्राविका है। वह धर्म में परम दृढ़ है।

अम्बड़ ने मन में सोचा– सुलसा श्राविका बड़ी पुण्यशालिनी है, जिसके लिए भगवान् स्वयं इस प्रकार कह रहे हैं। उसमें ऐसा कौन सा गुण है जिससे भगवान् ने उसे धर्म में दृढ़ बताया। मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूँगा। यह सोच कर उसने परिव्राजक (संन्यासी) का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा– आयुष्मति!

मुझे भोजन दो इससे तुम्हें धर्म होगा। सुलसा ने उत्तर दिया– जिन्हें देने से धर्म होता है, उन्हें मैं जानती हूँ।

वहाँ से लौट कर अम्बड़ ने आकाश में पद्मासन रचा और उस पर बैठ कर लोगों को आश्चर्य में डालने लगा। लोग उसे भोजन के लिए निमन्त्रित करने लगे किन्तु उसने किसी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। लोगों ने पूछा– भगवन्! ऐसा कौन भाग्यशाली है जिसके घर का भोजन ग्रहण करके आप पारणा करेंगे।

अम्बड़ ने कहा– मैं सुलसा के घर का आहार पानी ग्रहण करूँगा।

लोग सुलसा को बधाई देने आए। उन्होंने कहा– सुलसे! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे घर भूखा संन्यासी भोजन करेगा।

सुलसा ने उत्तर दिया– मैं इसे ढोंग मानती हूँ।

लोगों ने यह बात अम्बड़ से कही। अम्बड़ ने समझ लिया– सुलसा परम सम्यग्दृष्टि है जिससे महान् अतिशय देखने पर भी वह श्रद्धा में डाँवाडोल नहीं हुई।

इसके बाद अम्बड़ श्रावक ने जैन मुनि का रूप बनाया। 'णिसीहि णिसीहि' के साथ नमुक्कार मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसने सुलसा के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने मुनि जान कर उसका उचित सत्कार किया। अम्बड़ श्रावक ने अपना असली रूप बता कर सुलसा की बहुत प्रशंसा की। उसे भगवान् महावीर द्वारा की हुई प्रशंसा की बात कही। इसके बाद वह अपने घर चला गया।

सम्यक्त्व में दृढ़ होने के कारण सुलसा ने तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा। आगामी चौवीसी में उसका जीव पन्द्रहवें तीर्थङ्कर के रूप में उत्पन्न होगा और उसी भव में मोक्ष जायगा।

(ठाणांग सूत्र, ठाणा ६ सूत्र ६६१-६२ टीका)

(९) सीता

भरतक्षेत्र में मिथिला नाम की नगरी थी। वहाँ हरिवंशी राजा वासुकि का पुत्र राजा जनक राज्य करता था। उसका दूसरा नाम विदेह था। रानी का नाम विदेहा था। राजा न्याय-नीति-परायण था। प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था अतः प्रजा भी उसे बहुत मानती थी।

रानी विदेहा में राजरानी के योग्य सब ही गुण विद्यमान थे। सुख पूर्वक समय बिताती हुई रानी एक समय गर्भवती हुई। समय पूरा होने पर रानी की कुक्षि से एक युगल, अर्थात् एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुआ। इससे राजा, रानी और प्रजा को बहुत ही प्रसन्नता हुई।

इसी समय सौधर्म देवलोक का पिंगल नाम का देव अवधि-ज्ञान से अपना पूर्वभव देख रहा था। रानी विदेहा की कुक्षि से उत्पन्न होने वाले युगल सन्तान में से पुत्र रूप में उत्पन्न होने वाले जीव के साथ उसे अपने पूर्व भव के वैर का स्मरण हो आया। अपने वैर का बदला लेने के लिये वह शीघ्र ही रानी के प्रसूति-गृह में आया और वहाँ से बालक को उठा कर चल दिया। वह उसे मार डालना चाहता था किन्तु बालक की सुन्दर आकृति देख कर उसे उस पर दया आ गई। इससे उसे वैताढ्य पर्वत पर ले जाकर एक वन में सुनसान जगह पर रख दिया। इस प्रकार अपने वैर का बदला चुका हुआ मान कर वह वापिस अपने स्थान पर लौट आया।

वैताढ्य पर्वत पर रथनूपुर नाम का नगर था। वहाँ पर चन्द्रगति नाम का विद्याधर राज्य करता था। वनक्रीड़ा करता हुआ वह उधर निकल आया। एक सुन्दर बालक को पृथ्वी पर पड़ा हुआ

देख कर उसे आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों हुए। उसने तत्काल बालक को उठा लिया और अपने महल की ओर रवाना हुआ। घर आकर उसने वह बालक रानी को दे दिया। उसके कोई सन्तान नहीं थी इस लिए ऐसे सुन्दर बालक को प्राप्त कर उसे बहुत खुशी हुई। बालक की प्राप्ति के विषय में राजा और रानी के सिवाय किसी को कुछ भी मालूम न था इस लिये उन दोनों ने विचार किया कि इसे अपना निजी पुत्र होना जाहिर करके धूमधाम से इसका जन्मोत्सव मनाना चाहिये। ऐसा विचार कर राजा ने अपने परिजनों में तथा शहर में यह घोषणा करा दी कि रानी सगर्भा थी किन्तु कई कारणों से यह बात अब तक गुप्त रखी गई थी। आज रानी की कुक्षि से एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ है। इस घोषणा को सुन कर प्रजा में आनन्द छा गया। विविध प्रकार से खुशियाँ मनाई जाने लगीं। पुत्र जन्मोत्सव मना कर राजा ने पुत्र का नाम भामण्डल रखा। सुखपूर्वक लालन पालन होने से वह द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा। क्रमशः बढ़ता हुआ बालक यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। अब राजा चन्द्रगति को उसके अनुरूप योग्य कन्या खोजने की चिन्ता हुई।

अपने यहाँ पुत्र तथा पुत्री के उत्पन्न होने की शुभ सूचना एक दासी द्वारा प्राप्त करके राजा जनक खुश हो ही रहे थे इतने ही में पुत्र-हरण की दुःखद घटना घटी। दूसरी दासी द्वारा इस खबर को सुन कर राजा की खुशी चिन्ता में परिणत हो गई। उनके हृदय को भारी चोट पहुँची जिससे वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। प्रजा में भी अत्यन्त शोक छा गया। शीतल उपचार करने पर राजा की मूर्च्छा दूर हुई। पुत्री को ही पुत्र मान कर उन्होंने संतोष किया। जन्मोत्सव मना कर पुत्री का नाम सीता रक्खा। पाँच धायों द्वारा लालन पालन की जाती हुई सीता सुरक्षित बेल की तरह बढ़ने लगी।

योग्य वय होने पर स्त्री की चौसठ कलाओं में वह प्रवीण हो गई। अब राजा विदेह को उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई। वर में नीचे लिखी बातें अवश्य देखनी चाहियें—

कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
वरे गुणाः सप्त विलोकनीयास्ततः परं भाग्यवशा हि कन्या॥

अर्थात्—कुल, शील (स्वभाव और आचरण), सनाथता, (माता पिता एवं भाई आदि परिवार), विद्या, धन, शरीर (स्वास्थ्य आदि) वय (उम्र) ये सात बातें वर के अन्दर देख कर ही कन्या देनी चाहिये। इसके बाद कन्या अपने भाग्याधीन है।

वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में अर्द्धवर्बर नाम का एक देश था। वहाँ अन्तरंग नाम का एक म्लेच्छ राजा राज्य करता था। उसके बहुत से पुत्र थे। एक समय वे बड़ी भारी सेना लेकर मिथिला पर चढ़ आये और नाना प्रकार से उपद्रव करने लगे। राजा विदेह की सेना थोड़ी होने के कारण वह उनके उपद्रव रोकने में असमर्थ थी। उसकी सेना बारबार परास्त होती थी। यह देख कर राजा विदेह बहुत घबराया। सहायता के लिये अपने मित्र राजा दशरथ के पास उसने एक दूत भेजा। दूत की बात सुन कर राजा दशरथ अपने मित्र राजा विदेह की सहायता के लिए सेनासहित मिथिला जाने को तैयार हुए। उसी समय राम और लक्ष्मण आकर उनके सामने उपस्थित हुए और विनय पूर्वक अर्ज करने लगे कि हे पूज्य! आपकी वृद्धावस्था है। अतः हम लोगों को ही मिथिला जाने की आज्ञा दीजिये। पुत्रों का विशेष आग्रह देख कर राजा दशरथ ने उन्हें मिथिला की ओर विदा किया। वहाँ पहुँच कर राम और लक्ष्मण ने ऐसा पराक्रम दिखलाया कि म्लेच्छ राजा की सेना भाग गई। राजा विदेह और मिथिलावासी जनों को शान्ति मिली, वे निरुपद्रव होगए। उनका अद्भुत पराक्रम देख

कर राजा विदेह को बहुत प्रसन्नता हुई। उनका उचित सत्कार करके उन्हें अयोध्या की ओर विदा किया।

सीता का दूसरा नाम जानकी था। वह परमसुन्दरी एवं रूपवती थी। उसके रूप लावण्य की प्रशंसा चारों ओर फैल चुकी थी। एक समय नारद मुनि उसे देखने के लिये मिथिला में आये। राजमहल में आकर वे सीधे वहाँ पहुँचे जहाँ जानकी अपनी सखियों के साथ खेल रही थी। नारद मुनि के विचित्र रूप को देख कर जानकी डर कर भागने लगी, दासियों ने शोर किया जिससे राजपुरुष वहाँ पहुँचे और नारद मुनि को पकड़ कर अपमान पूर्वक महल से बाहर निकाल दिया। नारद मुनि को बड़ा क्रोध आया। वे इस अपमान का बदला लेने का उपाय सोचने लगे। सीता का एक चित्र बना कर वे वैताढ्य गिरि पर विद्याधरकुमार भामण्डल के पास पहुँचे। भामण्डल को वह चित्रपट दिखला कर सीता को हर लाने के लिये नारदमुनि उसे उत्साहित कर वहाँ से चले गये। चित्रपट देख कर भामण्डल सीता पर मुग्ध होगया। उसकी प्राप्ति के लिये वह रात दिन चिन्तित रहने लगा। राजपुत्र की चिन्ता और उदासीनता का कारण मालूम करके चन्द्रगति ने एक दूत जनक के पास भेजा और अपने पुत्र भामण्डल के लिये सीता की मांगणी की। दूत की बात सुन कर राजा जनक ने उत्तर दिया कि- मैंने अपनी प्यारी पुत्री सीता का स्वयंवर द्वारा विवाह करने का निश्चय किया है। स्वयंवर में सब राजाओं को निमन्त्रण दिया जायगा। मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार देवाधिष्ठित वज्रावर्त नाम का धनुष वहाँ रखा जायगा। जो धनुष पर बाण चढ़ाने में समर्थ होगा उसी के साथ सीता का पाणिग्रहण होगा। दूत ने वैताढ्य गिरि पर आकर सारी बात चन्द्रगति को कह सुनाई। राजा ने भामण्डल को आश्वासन दिया और सीता के स्वयंवर की प्रतीक्षा करने लगा।

दूत के लौट जाने पर राजा जनक ने बहुत कुशल कारीगरों को बुला कर सुन्दर स्वयंवर मण्डप बनाने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् राजा ने विविध देशों के राजाओं के पास स्वयंवर का निमन्त्रण भेजा। निश्चित तिथि पर अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में उपस्थित हुए। राजा दशरथ राम, लक्ष्मण आदि अपने पुत्रों के साथ और विद्याधर चन्द्रगति अपने पुत्र भामण्डल के साथ वहाँ आये। सभी राजाओं के यथायोग्य आसन पर बैठ जाने के पश्चात् राजा जनक ने धनुष की ओर संकेत करके सब राजाओं को अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। इसी समय एक प्रतिहारी के साथ सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत सीता स्वयंवर मण्डप में आई। उस के अद्भुत रूप लावण्य को देख कर उपस्थित सभी राजा और राजकुमार उसकी प्राप्ति के लिये अपने अपने इष्टदेव का ध्यान करने लगे।

राजा जनक की प्रतिज्ञा सुन कर बैठे हुए राजकुमारों में से प्रत्येक वारी वारी से धनुष के पास आकर अपना बल अजमाने लगे किन्तु धनुष पर वाण चढ़ाना तो दूर रहा, उस धनुष को हिलाने में भी समर्थ न हुए। जो राजकुमार बड़े गर्व के साथ अकड़ कर धनुष के पास आते थे असफल होजाने पर वे लज्जा से सिर नीचा करके वापिस अपने आसन पर जा बैठते थे। राजकुमारों की यह दशा देख कर राजा जनक के हृदय में चिन्ता उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा—क्या क्षत्रियों का बल पराक्रम पूरा हो चुका है? क्या मेरी प्रतिज्ञा पूरी न होगी? क्या सीता का विवाह न हो सकेगा? उसके हृदय में इस प्रकार के संकल्प विकल्प उठ रहे थे। इतने ही में काकुत्स्थकुलदीपक दशरथनन्दन राम अपने आसन से उठे। धनुष के पास आकर अनायास ही उन्होंने धनुष को उठा कर उस पर वाण चढ़ा दिया। यह देख कर राजा जनक की प्रसन्नता की

सीमा न रही। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। सीता ने परम हर्ष के साथ अपने भाग्य की सराहना करते हुए राम के गले में वरमाला डाल दी।

राजा जनक और राजा दशरथ पहले से मित्र थे। अब उनकी मित्रता और भी गहरी हो गई। राजा जनक ने विधिपूर्वक सीता का विवाह राम के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्र और पुत्रवधू को साथ लेकर सानन्द अयोध्या लौट आए और सुखपूर्वक समय बिताने लगे।

स्वयंवर में आए हुए दूसरे राजा लोग निराश होकर अपने अपने नगर को वापिस लौटे। विद्याधरकुमार भामण्डल को अत्यधिक निराशा हुई। सीता की प्राप्ति न होने से वह रात दिन चिन्तित एवं उदास रहने लगा।

एक समय चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज अयोध्या में पधारे। राजा दशरथ अपने परिवार सहित धर्मोपदेश सुनने के लिए गया। भामण्डल को साथ लेकर आकाशमार्ग से गमन करता हुआ चन्द्रगति भी उधर से निकला। मुनिराज को देख कर वह नीचे उतर आया। भक्तिपूर्वक वन्दना नमस्कार कर वह वहाँ बैठ गया। 'भामण्डल अब भी सीता की अभिलाषा से संतप्त हो रहा है' यह बात अपने ज्ञान द्वारा जान कर मुनिराज ने समयोचित देशना दी। प्रसंगवश चन्द्रगति और उसकी रानी पुष्पवती के तथा भामण्डल और सीता के पूर्वभव कह सुनाये। उसी में भामण्डल और सीता का इस भव में एक साथ जन्म लेना और तत्काल पूर्वभव के वैरी एक देव द्वारा भामण्डल का हरा जाना आदि सारा वृत्तान्त भी कह सुनाया। इसे सुन कर भामण्डल को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। मूर्च्छित होकर वह उसी क्षण भूमि पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद उसकी मूर्च्छा दूर हुई। जिस तरह मुनिराज ने कहा था उसी प्रकार उसने अपने पूर्वभव का सारा वृत्तान्त जान लिया।

सीता को अपनी बहिन समझ कर उसने उसे प्रणाम किया। जन्म से बिछुड़े हुए अपने भाई को प्राप्त कर सीता को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। चन्द्रगति ने दूत भेजकर राजा जनक और उसकी रानी विदेहा को भी वहाँ बुलवाया और जन्मते ही जिसका हरण होगया था वह यह भामण्डल तुम्हारा पुत्र है आदि सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। यह सुन कर उन्हें परम हर्ष हुआ और भामण्डल को अपना पुत्र समझ कर छाती से लगा लिया। अपने वास्तविक माता पिता को पहिचान कर भामण्डल को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उसने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। अपना पूर्वभव सुन कर चन्द्रगति को वैराग्य उत्पन्न होगया। भामण्डल को राजसिंहासन पर बिठा कर दीक्षा अङ्गीकार कर ली।

राजा दशरथ ने भी मुनिराज से अपने पूर्वभव के विषय में पूछा। अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुन कर राजा दशरथ को भी वैराग्य उत्पन्न होगया। उन्होंने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य देकर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

राम के राज्याभिषेक की तय्यारी होने लगी। रानी कैकयी की दासी मन्थरा से यह सहन नहीं हो सका। उसने कैकयी को उकसाया और संग्राम के समय राजा दशरथ द्वारा दिये गये दो वर मांगने के लिये प्रेरित किया। दासी की बातों में आकर कैकयी ने राजा से दो वर माँगे— मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी मिले और राम को चौदह वर्ष का वनवास। अपने वचन का पालन करने के लिये राजा ने उसके दोनों वरदान स्वीकार किये। पिता की आज्ञा से राम वन जाने के लिये तय्यार हुए। जब यह बात सीता को मालूम हुई तो वह भी राम के साथ वन जाने को तय्यार हो गई। रानी कौशल्या के पास जाकर वन जाने की अनुमति माँगने लगी। कौशल्या ने कहा— पुत्रि! राम पिता की आज्ञा से

वन जा रहा है। वह वीर पुरुष है। उसके लिये कुछ कठिन नहीं है किन्तु तू बहुत कोमलाङ्गी है। तू सदा महलों में रही है। वन में शीत ताप आदि के तथा पैदल चलने के कष्ट को कैसे सहन कर सकेगी ? सीता ने कहा— माताजी ! आपका कहना ठीक है किन्तु आपका आशीर्वाद मेरी सब कठिनाइयों को दूर करेगा। जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमा का, बिजली मेघ का और छाया पुरुष का अनुसरण करती है उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रियों को अपने पति का अनुसरण करना चाहिए। पति के सुख में सुखी और दुःख में दुखी रहना उनका परम धर्म है। इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन कर सीता ने कौशल्या से वन जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

राम की वन जाने की बात सुन कर लक्ष्मण एकदम कुपित हो गया। वह कहने लगा कि मेरे रहते हुए राम के राजगद्दी के हक को कौन छीन सकता है ? पिताजी तो सरल प्रकृति के हैं किन्तु स्त्रियाँ स्वभावतः कुटिल हुआ करती हैं। अन्यथा कैकयी अपना वरदान इस समय क्यों माँगती ? मैं राम को वन में न जाने दूँगा। मैं उन्हें राजगद्दी पर बिठाऊँगा। ऐसा सोच कर लक्ष्मण राम के पास आया। राम ने समझा कर उसका क्रोध शान्त किया। वह भी राम के साथ वन जाने को तय्यार हो गया। तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मण सहित राम वन की ओर रवाना हो गए।

एक समय एक सघन वन में एक झोंपड़ी बना कर सीता, लक्ष्मण और राम ठहरे हुए थे। सीता के अद्भुत रूप लावण्य की शोभा सुन कर कामातुर बना हुआ रावण संन्यासी का वेष बना कर वहाँ आया। राम और लक्ष्मण के बाहर चले जाने पर वह झोंपड़ी के पास आया और भिक्षा माँगने लगा। भिक्षा देने के लिये जब सीता बाहर निकली तो रावण ने उसे पकड़ लिया और अपने पुष्पक विमान में बिठा कर लंका ले गया। वहाँ ले जाकर सीता को

अशोक वाटिका में रख दिया। अब कामी रावण सीता को अनेक तरह के प्रलोभन देकर उसे अपने जाल में फंसाने की चेष्टा करने लगा। हे देवि! तुम प्रसन्न होकर मुझे स्वीकार करो। मैं तुम्हारा दास बन कर रहूँगा। मैं तुम्हें अपनी पटरानी बना कर रखूँगा। तुम्हारी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करूँगा। किसी स्त्री पर बलात्कार न करने का मेरे नियम लिया हुआ है। अतः हे देवि! तू मुझे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर। सीता ने रावण के शब्दों पर कुछ भी ध्यान न दिया। वह तो अपने मन में 'राम राम' की रट लगा रही थी। जब रावण ने देखा कि सीता पर उसके बताये गये प्रलोभनों का कुछ भी असर नहीं हो रहा है तब वह उसे अपनी तलवार का डर दिखाने लगा। सीता इससे डरने वाली न थी। उसने निर्भीक होकर जवाब दिया कि हे रावण! तू अपनी तलवार का डर किसे बता रहा है? मुझे अपना पतिव्रत धर्म प्राणों से भी प्यारा है। अपने सतीत्व की रक्षा के लिये मैं हँसते हँसते अपने प्राण न्योछावर कर सकती हूँ। जिस प्रकार जीवित सिंह की मूँछों के बाल उखाड़ना और जीवित शेषनाग के मस्तक की मणि को प्राप्त करना असम्भव है उसी प्रकार सतियों के सतीत्व का अपहरण करना भी असम्भव है।

रावण ने साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों नीतियों का प्रयोग सीता पर कर लिया किन्तु उसकी एक भी युक्ति सफल न हुई। सीता को अपने सतीत्व में मेरु के समान निश्चल एवं दृढ समझ कर रावण निराश हो गया। वह वापिस अपने महल को लौट गया किन्तु वह कामाग्नि में दग्ध होने लगा। अपने पति की यह दशा देख कर मन्दोदरी को बहुत दुःख हुआ। वह कहने लगी— हे स्वामिन्! सीता का हरण करके आपने बहुत अनुचित कार्य किया है। आप सरीखे उत्तम पुरुषों को यह कार्य

नाम की तीन रानियाँ और थीं। सीता को सगर्भा जान कर उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे उस पर कोई कलंक चढ़ाना चाहती थीं अतः रातदिन उसका छिद्र ढूँढ़ने लगीं। एक दिन कपटपूर्वक उन्होंने सीता से पूछा कि सखि! तुम लंका में बहुत समय तक रही थी और रावण को भी देखा था। हमें भी बताओ कि रावण का रूप कैसा था? सीता की प्रकृति सरल थी। उसने कहा— बहिनो! मैंने रावण का रूप नहीं देखा किन्तु कभी कभी मुझे डराने धमकाने के लिए वह अशोक वाटिका में आया करता था इसलिए उसके केवल पैर मैंने देखे हैं। सौतों ने कहा— अच्छा उसके पैर ही चित्रित करके हमें दिखाओ। उन्हें देखने की हमें बहुत इच्छा हो रही है। सरल प्रकृति वाली सीता उनके कपटभाव को न जान सकी। सरल भाव से उसने रावण के दोनों पैर चित्रित कर दिये। सौतों ने उन्हें अपने पास रख लिया। अब वे अपनी इच्छा को पूरी करने का उचित अवसर देखने लगीं। एक समय राम अकेले बैठे हुए थे। तब सब सौतें मिल कर उनके पास गईं। चित्र दिखा कर वे कहने लगीं— स्वामिन्! जिस सीता को आप पतिव्रता और सती कहते हैं उसके चरित्र पर जरा गौर कीजिए। वह अब भी रावण की ही इच्छा करती है। वह नित्यप्रति इन चरणों के दर्शन करती है। सौतों की बात सुन कर राम विचार में पड़ गये किन्तु किसी अनबन के कारण सौतों ने यह बात बनाई होगी यह सोच कर राम ने उनकी बातों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। अपना प्रयास असफल होते देख सौतों की ईर्ष्या और भी बढ़ गई। उन्होंने अपनी दासियों द्वारा लोगों में धीरे धीरे यह बात फैलानी शुरू की। इससे लोग भी अब सीता को सकलंक समझने लगे।

एक दिन रात्रि के समय राम सादा वेष पहन कर लोगों का सुख दुःख जानने के लिये नगर में निकले। घूमते हुए वे एक धोबी के घर

शोभा नहीं देता। सीता महासती है। वह मन से भी परपुरुष की इच्छा नहीं करती। सतियों को कष्ट देना ठीक नहीं है। अतः आप इस दुष्ट वासना को हृदय से निकाल दीजिए और शीघ्र ही सीता को वापिस राम के पास पहुँचा दीजिए। रावण के छोटे भाई विभीषण ने भी रावण को बहुत कुछ समझाया किन्तु रावण तो कामान्ध बना हुआ था। उसने किसी की बात पर ध्यान न दिया।

राम लक्ष्मण जब वापिस लौट कर झोंपड़ी पर आये तो उन्होंने वहाँ सीता को न देखा, इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे इधर उधर सीता की खोज करने लगे किन्तु सीता का कहीं पता न लगा। सीता की खोज में घूमते हुए राम लक्ष्मण की सुग्रीव से भेट हो गई। सीता की खोज के लिये सुग्रीव ने भी चारों दिशाओं में अपने दूत भेजे। हनुमान् द्वारा सीता की खबर पाकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बहुत बड़ी सेना लेकर लंका गये। अपनी सेना को सज्जित कर रावण भी युद्ध के लिये तय्यार हुआ। दोनों तरफ की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। कई वीर योद्धा मारे गये। अन्त में वासुदेव लक्ष्मण द्वारा प्रतिवासुदेव रावण मारा गया। राम की विजय हुई। सीता को लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्या को लौटे। माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी को तथा भरत को और सभी नगर निवासियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी ने मिल कर राम का राज्याभिषेक किया। न्याय नीतिपूर्वक प्रजा का पुत्र-वत् पालन करते हुए राजा राम सुखपूर्वक दिन बिताने लगे।

एक समय रात्रि के अन्तिम भाग में सीता ने एक शुभ स्वप्न देखा। उसने अपना स्वप्न राम से कहा। स्वप्न सुन कर राम ने कहा— देवि! तुम्हारी कुक्षि से किसी वीरपुत्र का जन्म होगा। सीता यतना पूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी।

सीता के सिवाय राम के प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा

के पास जा पहुँचे। धोबिन रात में देरी से आई थी। वह दरवाजा खटखटा रही थी। धोबी उसे बुरी तरह से डाट रहा था और कह रहा था कि मैं राम थोड़ा ही हूँ जिन्होंने रावण के पास रही हुई सीता को वापिस अपने घर में रख लिया। धोबी के इन शब्दों ने राम के हृदय को भेद डाला। उन्होंने सीता को त्यागने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन राम ने सारी हकीकत लक्ष्मण से कही। लक्ष्मण ने कहा—पूज्य भ्राता! आप यह क्या कह रहे हैं? सीता शुद्ध है। वह महासती है। उसके विषय में किसी प्रकार की भी शङ्का न करनी चाहिये। राम ने कहा— तुम्हारा कहना ठीक है किन्तु लोकापवाद से रघुकुल का निर्मल यश मलिन होता है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता।

दूसरे दिन प्रातःकाल राम ने सीता को वन के दृश्य देखने रूप दोहद को पूरा करने के बहाने से रथ में बैठा कर जंगल में भेज दिया। एक भयंकर जंगल के अन्दर ले जाकर सारथी ने सीता से सारी हकीकत कही। सुनते ही सीता मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। शीतल पवन से कुछ देर बाद उसकी मूर्च्छा दूर हुई। सीता की यह दशा देख कर सारथी बहुत दुखी हुआ किन्तु वह विवश था। सीता को वहाँ छोड़ कर वह वापिस अयोध्या लौट आया। सीता अपने मन में सोच रही थी कि मैंने ऐसा कौन सा अशुभ कार्य किया या किसी पर झूठा कलंक चढाया है जिसके परिणाम स्वरूप इस जन्म में मुझ पर यह झूठा कलंक लगा है।

पुण्डरीकपुर का स्वामी राजा वज्रजंघ अपने मंत्रियों सहित उस वन में हाथी पकड़ने के लिये आया था। अपना कार्य करके वापिस लौटते हुए उसने विलाप करती हुई सीता को देखा। नजदीक जाकर उसने सीता से उसके दुःख का कारण पूछा। प्रधानमन्त्री ने राजा का परिचय देते हुए कहा— हे सुभगे! ये पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ हैं। ये परनारी के सहोदर परम श्रावक हैं। तुम

अपना वृत्तान्त इनसे कहो। ये अवश्य तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।

मन्त्री के कथन पर विश्वास करके सीता ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा कहने लगा– हे आर्ये! एक धर्म वाले परस्पर बन्धु होते हैं। इसलिये तुम मेरी धर्म बहिन हो। तुम मुझे अपना भाई समझ कर मेरे घर को पावन करो और धर्म ध्यान करती हुई सुख पूर्वक अपना समय बिताओ। वज्रजंघ का शुद्ध हृदय जान कर सीता ने पुण्डरीकपुर में जाना स्वीकार कर लिया। राजा वज्रजंघ सीता को पालकी में बैठा कर अपने नगर में ले आया। सीता विधिवत् अपने गर्भ का पालन करने लगी।

समय पूरा होने पर सीता ने एक पुत्र युगल को जन्म दिया। राजा वज्रजंघ ने दोनों पुत्रों का जन्मोत्सव मनाया। उनमें से एक का नाम लव और दूसरे का नाम कुश रखा। दोनों राजकुमार आनन्दपूर्वक बढ़ने लगे। योग्य वय होने पर उन दोनों को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दिलाई गई। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर राजा वज्रजंघ ने दूसरी बत्तीस राजकन्याओं का और अपनी पुत्री शशिकला का विवाह लव के साथ कर दिया। कुश के लिए राजा वज्रजंघ ने पृथ्वीपुर के राजा पृथुराज से उसकी कन्या की मांगणी की किन्तु लव, कुश के वंश को अज्ञात बता कर पृथुराज ने अपनी कन्या देने से इन्कार कर दिया। राजा वज्रजंघ ने इसे अपना अपमान समझा। राजा वज्रजंघ ने लव कुश को साथ लेकर पृथुराज के नगर पर चढ़ाई कर दी। उसकी प्रबल सेना के सामने पृथुराज की सेना न टिक सकी। परास्त होकर वह मैदान छोड़ कर भाग गई। पृथुराज भी अपने प्राण बचाने के लिए भागने लगा किन्तु लव, कुश ने उसे चारों ओर से घेर लिया। कुश ने कहा– राजन्! आप सरीखे उत्तम कुल वंश वाले हम जैसे हीन कुल वंश वालों के सामने से अपने प्राण बचा कर भागते हुए

शोभा नहीं देते। जरा मैदान में खड़े रह कर हमारा पराक्रम तो देखो जिससे हमारे कुल वंश का पता चल जाय। कुश के ये मर्मकारी वचन सुन कर पृथुराज का अभिमान चूरचूर हो गया। वह मन में सोचने लगा– इन दोनों वीरों का पराक्रम ही इनके उत्तम कुल वंश का परिचय दे रहा है। ये अवश्य ही किसी वीर क्षत्रिय की सन्तान हैं। इन्हें अपनी कन्या देने में मेरा गौरव ही है। ऐसा सोच कर पृथुराज ने राजा वज्रजंघ से सुलह करके अपनी कन्या का विवाह कुश के साथ कर दिया। इसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राजा वज्रजंघ के प्रार्थना करने पर नारद मुनि ने लव और कुश के कुल वंश का परिचय दिया, जिससे पृथुराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने आप को सौभाग्यशाली मानने लगा।

इसके बाद राजा वज्रजंघ लव और कुश के साथ अनेक नगरों पर विजय करता हुआ पुण्डरीकपुर लौट आया।

सती साध्वी सीता पर कलंक चढ़ाना, गर्भवती अवस्था में निष्कारण उसे भयङ्कर वन में छोड़ देना आदि सारा वृत्तान्त नारदजी द्वारा जान कर लव और कुश राम पर अति कुपित हुए। राजा वज्रजंघ की सेना को साथ में लेकर लव और कुश ने अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। इस अचानक चढ़ाई से राम लक्ष्मण को अति विस्मय हुआ। वे सोचने लगे कि यह कौन शत्रु है और इस आकस्मिक आक्रमण का क्या कारण है? आखिर अपनी सेना को लेकर वे भी मैदान में आए। घमासान युद्ध शुरू हुआ। लव कुश के बाणप्रहार से परास्त होकर राम की सेना अपने प्राण लेकर भागने लगी। अपनी सेना की यह दशा देख कर वे विस्मय के साथ विचार में पड़ गए कि हमारी सेना ने आज तक अनेक युद्ध किये। सर्वत्र विजय हुई किन्तु ऐसी दशा कभी नहीं हुई। क्या उपार्जन की हुई कीर्ति पर आज धब्बा लग जायगा? कुछ भी हो

हमें वीरता पूर्वक शत्रु का मुकाबला करना ही चाहिए। ऐसा सोच कर लक्ष्मण धनुष बाण लेकर आगे बढ़ा। उसके आते हुए बाणों को लव और कुश बीच में ही काट देते थे। शत्रु पर फेंके सब शस्त्रों को निष्फल जाते देख कर लक्ष्मण अति कुपित हुए। विजय का कोई उपाय न देख कर शत्रु का सिर काट कर लाने के लिए उन्होंने चक्र चलाया। लव कुश के पास आकर उन दोनों भाइयों की प्रदक्षिणा देकर चक्र वापिस लौट आया। अब तो राम लक्ष्मण की निराशा का ठिकाना न रहा। वे दोनों उदास होकर बैठ गये और सोचने लगे कि मालूम होता है कि ये कोई नये बलदेव और वासुदेव प्रकट हुए हैं।

उसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राम लक्ष्मण को उदास बैठे देख कर वे हंस कर कहने लगे- हर्षित होने के बदले आज आप उदास होकर कैसे बैठे हैं? अपने शिष्य और पुत्र के सामने पराजित होना तो हर्ष की बात है। राम लक्ष्मण ने कहा—महाराज! हम आपकी बात का रहस्य कुछ भी नहीं समझ सके। जरा स्पष्ट करके कहिये। नारदजी ने कहा ये लड़ने वाले दोनों वीर माता सीता के पुत्र हैं। चक्र ने भी इस बात की सूचना दी है क्योंकि वह स्वगोत्री पर नहीं चलता।

नारदजी की बात सुन कर राम लक्ष्मण के हर्ष का पारावार न रहा। वे अपने वीर पुत्रों से भेंट करने के लिए आतुरता पूर्वक उनकी तरफ चले। लव कुश के पास जाकर नारदजी ने यह सारा वृत्तान्त कहा। उन्होंने अपने अस्त्र शस्त्र नीचे डाल दिये और आगे बढ़ कर सामने आते हुए राम लक्ष्मण के चरणों में सिर नमाया। उन्होंने भी प्रेमालिङ्गन कर आशीर्वाद दिया। अपने वीर पुत्रों को देख कर उन्हें अति हर्ष हुआ। इसके बाद राम ने सीता को लाने की आज्ञा दी। सीता के पास जाकर लक्ष्मण ने चरणों

में नमस्कार किया और अयोध्या में चल कर उसे पावन करने की प्रार्थना की। सीता ने कहा— वत्स ! अयोध्या चलने में मुझे कोई एतराज नहीं है किन्तु जिस लोकापवाद से डर कर राम ने मेरा त्याग किया था वह तो ज्यों का त्यों बना रहेगा। इसलिए मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि अपने सतीत्व की परीक्षा देकर ही मैं अयोध्या में प्रवेश करूँगी।

राम के पास आकर लक्ष्मण ने सीता की प्रतिज्ञा कह सुनाई। सती सीता को निष्कारण वन में छोड़ देने के कारण होने वाले पश्चात्ताप से राम पहले से ही खिन्न हो रहे थे। सीता की कठिन प्रतिज्ञा को सुन कर वे और भी अधिक खिन्न हुए। राम के पास अन्य कोई उपाय न था, वे विवश थे। उन्होंने एक अग्नि का कुण्ड बनवाया। इस दृश्य को देखने के लिए अनेक सुर नर वहाँ इकट्ठे हुए और उत्सुकता पूर्ण नेत्रों से सीता की ओर देखने लगे। अग्नि अपना प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी थी। उसकी ओर आँख उठा कर देखना भी लोगों के लिए कठिन हो गया। उस समय सीता अग्निकुण्ड के पास आकर खड़ी हो गई और उपस्थित देव और मनुष्यों के सामने अग्नि से कहने लगी—

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमध्ये,
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह शरीरं पापकं पावक ! त्वं,
सुकृत निकृतकानां त्वं हि सर्वत्र साक्षी॥

अर्थात्— मन, वचन या काया से, जागते समय या स्वप्न में यदि रामचन्द्रजी को छोड़ कर किसी दूसरे पुरुष में मेरा पतिभाव हुआ हो तो हे अग्नि ! तुम इस पापी शरीर को जला डालो। सदाचार और दुराचार के लिए इस समय तुम्हीं साक्षी हो।

ऐसा कह कर सीता उस अग्निकुण्ड में कूद पड़ी। तत्काल अग्नि

बुझ कर वह कुण्ड जल से भर गया। शीलरक्षक देवों ने जल में कमल पर सिंहासन बना दिया और सती सीता उस पर बैठी हुई दिखने लगी। यह दृश्य देख कर लोगों के हर्ष का ठिकाना न रहा। सती के जयनाद से आकाश गूँज उठा। देवताओं ने सती पर पुष्पवृष्टि की।

राम उपस्थित जनसमाज के सामने पश्चात्ताप करने लगे- मैंने सती साध्वी पत्नी को इतना कष्ट दिया। सत्यासत्य का निर्णय किए बिना केवल लोकापवाद से डर कर भयङ्कर वन में छोड़ कर मैंने उसे प्राणान्त कष्ट दिया। यह मेरा अविचारपूर्ण कार्य था। सती को कष्ट में डाल कर मैंने भारी पाप उपार्जन किया है। मैं इस पाप से कैसे छूटूँगा। इस प्रकार पश्चात्ताप में पड़े हुए अपने पति को देख कर सीता कहने लगी- नाथ! आपका पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। सोने को अग्नि में तपाने से उसकी कीमत बढ़ती है घटती नहीं। इसी प्रकार आपने मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। यदि यह सारा बनाव न बना होता तो शील का माहात्म्य कैसे प्रकट होता? इस लिए आपको पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार पति पत्नी के संवाद को सुन कर सब लोग कहने लगे कि-सर्वत्र सत्य की जय होती है। सती सीता सत्य पर अटल थी। अनेक विपत्तियाँ आने पर भी वह शील में दृढ़ रही इसी लिए आज उसकी सर्वत्र जय हो रही है।

उस समय चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज वहाँ पधारे। सब लोगों ने विनयपूर्वक वन्दना की और धर्मोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। विशेष लाभ समझ कर मुनिराज ने धर्मोपदेश फरमाया। कितने ही सुलभबोधि जीवों ने वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अङ्गीकार की। सीता ने मुनिराज से पूछा- हे भगवन्! पूर्व जन्म में मैंने ऐसा कौन सा कार्य किया जिससे मुझ पर यह कलंक

लगा ? कृपा करके कहिये।

उपस्थित जनसमाज के सामने मुनिराज ने कहना शुरू किया। भव्यो! अपनी आत्मा का हित चाहने वाले पुरुषों को झूठ वचन, दोषारोपण, निन्दा और किसी की गुप्त बात को प्रकट करना इत्यादि अवगुणों का सर्वथा त्याग करना चाहिये। किसी निर्दोष व्यक्ति पर झूठा कलंक चढ़ाना तो अतिनिन्दनीय कार्य है। ऐसा व्यक्ति लोक में निन्दा का पात्र होता है और परलोक में अनेक कष्ट भोगता है। जो व्यक्ति शुद्ध संयम पालने वाले मुनिराज पर झूठा कलंक लगाता है उस पर सती सीता की तरह झूठा कलंक आता है। सीता के पूर्वभव की कथा इस प्रकार है—

भरतक्षेत्र में मृणालिनी नाम की नगरी थी। उसमें श्रीभूति नाम का एक प्रतिष्ठित पुरोहित रहता था। उसकी स्त्री का नाम सरस्वती था। उसके एक पुत्री थी जिसका नाम वेगवती था।

एक दिन अपनी सखियों के साथ खेलती हुई वेगवती नगरी से कुछ दूर जंगल की ओर निकल गई। आगे जाकर उसने देखा कि एक कृशकाय तपस्वी मुनिराज काउसग्ग करके ध्यान में खड़े हैं। नगरी में इसकी खबर मिलने से सैकड़ों नर नारी उनके दर्शन करने के लिए आ रहे हैं। यह देख कर वेगवती के हृदय में मुनि पर पूर्वभव का वैर जागृत हो गया। वह दर्शनार्थ आने वाले लोगों से कहने लगी— संसार को छोड़ कर साधु का वेष पहनने वाले भी कितने कपटी और ढोंगी होते हैं। भोले प्राणियों को ठगने के लिये वे क्या क्या दम्भ रचते हैं। पवित्र कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की सेवा को छोड़ कर लोग भी ऐसे पाखण्डियों की ही सेवा करते हैं। मैंने अभी देखा था कि यह साधु एकान्त में एक स्त्री के साथ क्रीड़ा कर रहा था। इससे ध्यानस्थ मुनि का चित्त संतप्त हो उठा। वे विचारने लगे कि मैं निर्दोष हूँ इस लिए मुझे तो किसी प्रकार

का दुःख नहीं है किन्तु इससे जैन शासन कलङ्कित होता है। इस लिए मेरे सिर से जब यह कलंक उतरेगा तभी मैं काउसग्ग पार कर अन्न जल ग्रहण करूँगा। ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करके मुनि ध्यान में विशेष दृढ़ बन गये।

शासनदेवी का आसन कंपित हुआ। उसने अवधिज्ञान द्वारा मुनि के भावों को जान लिया। वह तत्काल वहाँ आई और वेगवती के उदर में शूल रोग उत्पन्न कर दिया जिससे उसे प्राणान्त कष्ट होने लगा। वह उपस्थित जनसमुदाय के सामने मुनि को लक्ष्य करके उच्च स्वर से कहने लगी—भगवन्! आप सर्वथा निर्दोष हैं। मैंने आपके ऊपर मिथ्या दोष लगाया है। हे क्षमानिधे! आप मेरे अपराध को क्षमा करें। अपना अभिग्रह पूरा हुआ जान कर मुनि ने काउसग्ग पार लिया। जनता के आग्रह से मुनि ने धर्मोपदेश फरमाया। वेगवती सुलभबोधि थी। उपदेश से उसका हृदय परिवर्तित होगया। उसे धर्म पर पूर्ण श्रद्धा होगई। उसी समय उसने श्राविका के व्रत अङ्गीकार कर लिए। कुछ समय पश्चात् उसे संसार से वैराग्य हो गया। दीक्षा अङ्गीकार कर शुद्ध संयम का पालन करने लगी। कई वर्षों तक संयम का पालन कर वह पाँचवें देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से चव कर मिथिला के राजा जनक के घर पुत्रीरूप से उत्पन्न हुई। पूर्वभव में इसने मुनि पर झूठा कलंक लगाया था इसलिये इस भव में इस पर भी यह झूठा कलंक आया था।

अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुन कर सीता को संसार से विरक्ति होगई। उसी समय राम की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन करती रही। अपना अन्तिम समय नजदीक आया जान कर उसने विधिपूर्वक संलेखना संथारा किया और मर कर बारहवें देवलोक में इन्द्र का पद प्राप्त किया। वहाँ से चव कर कितनेक भव करके मोक्ष प्राप्त करेगी।

(१०) सुभद्रा

प्राचीन समय में वसन्तपुर नाम का एक रमणीय नगर था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसके मन्त्री का नाम जिनदास था। वह जैन धर्मानुयायी बारह व्रतधारी श्रावक था। उसकी पत्नी का नाम तत्त्वमालिनी था। अपने पति के समान वह पूर्ण धर्मानुरागिणी और श्राविका थी। उसकी कुक्षि से एक महा रूपवती कन्या का जन्म हुआ। इससे माता और पिता दोनों को बहुत प्रसन्नता हुई। जन्मोत्सव मना कर उन्होंने उसका नाम सुभद्रा रक्खा।

माता पिता के विचार, व्यवहार और रहन सहन का सन्तान पर बहुत असर पड़ता है। सुभद्रा पर भी माता पिता के धार्मिक संस्कारों का गहरा असर पड़ा। बचपन से ही धर्म की ओर उसकी विशेष रुचि थी और धर्मक्रियाओं पर विशेष प्रेम था। माता पिता की देखादेख वह भी धार्मिक क्रियाएं करने लगी। थोड़े ही समय में सुभद्रा ने सामायिक, प्रतिक्रमण, नव तत्त्व, पच्चीस क्रिया आदि का बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

योग्य वय होने पर जिनदास को सुभद्रा के योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई। सेठ ने विचार किया कि मेरी पुत्री की धर्म के प्रति विशेष रुचि है इस लिए किसी जैन धर्मानुयायी वर के साथ विवाह करने से ही इसका दाम्पत्य जीवन सुखमय हो सकता है। यह सोच कर जिनदास ऐसे ही वर की खोज में रहने लगा।

वसन्तपुर व्यापार का केन्द्र था। अनेक नगरों से आकर व्यापारी वहाँ व्यापार किया करते थे। एक समय चम्पानिवासी बुद्धदास नाम का व्यापारी वहाँ आया। वह बौद्ध मतावलम्बी था। एक दिन व्याख्यान सुन कर वापिस आती हुई सुभद्रा को उसने देखा। उसने उसके विषय में पूछताछ की। किसी ने उसे बताया कि

यह जिनदास श्रावक की पुत्री है, अभी कुंवारी है। किसी जैन-धर्मप्रेमी के साथ ही विवाह करने का इसके पिता का निश्चय है।

बुद्धदास के हृदय में उस कन्या को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो गई। वह मन में विचारने लगा कि मेरे में और तो सारे गुण विद्यमान हैं सिर्फ इतनी कमी है कि मैं जैनी नहीं हूँ। इसे प्राप्त करने के लिये मैं जैनी भी बन जाऊँगा। ऐसा दृढ़ निश्चय करके बुद्धदास अब जैन साधुओं के पास जाने लगा। दिखावटी विनय भक्ति करके वह उनके पास ज्ञान सीखने लगा। मुनिवन्दन, व्याख्यानश्रवण, त्याग, पच्चक्खाण, सामायिक, पौषध आदि धार्मिक क्रियाएं करने लगा।

अब बुद्धदास पक्का धार्मिक समझा जाने लगा। सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। धीरे धीरे जिनदास श्रावक को भी ये सारी बातें मालूम हुईं। एक दिन जिनदास ने उसे अपने घर भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। बुद्धदास तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था ही। उसे बहुत हर्ष हुआ। प्रातःकाल उठ कर उसने नित्य नियम किया। मुनिवन्दन करके उसने पोरिसी का पच्चक्खाण कर लिया। पोरिसी आने पर वह जिनदास श्रावक के घर आया। थाली परोसते समय उसने कहा मुझे अमुक विगय और इतने द्रव्यों के सिवाय आज त्याग है इसलिए इसका ध्यान रखियेगा।

बुद्धदास की इन बातों से जिनदास को यह विश्वास होगया कि धर्म पर इसका पूर्ण प्रेम है और यह धर्म के मर्म को अच्छी तरह जानता है। यह सुभद्रा के योग्य वर है ऐसा सोच कर जिनदास ने बुद्धदास के सामने अपने विचार प्रकट किये। पहले तो बुद्धदास ने ऊपरी ढोंग बता कर कुछ आनाकानी की किन्तु सेठ के अधिक कहने पर बुद्धदास ने कहा— यद्यपि इस समय मेरा विचार विवाह करने का नहीं था तथापि आप सरीखे बड़े आद-

मियों के वचनों का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। मैं तो आप सरीखे बड़े श्रावकों की आज्ञा का पालन करने वाला हूँ।

बुद्धदास का नम्रता भरा उत्तर सुन कर जिनदास का हृदय प्रेम से भर गया। शुभ मुहूर्त में उसने सुभद्रा का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ समय तक बुद्धदास वहीं पर रहा। बाद में उनकी आज्ञा लेकर वह अपने घर चम्पापुरी में लौट आया। वहाँ आने पर सुभद्रा को मालूम हुआ कि स्वयं बुद्धदास और उसका सारा कुटुम्ब बौद्धधर्मी है। बुद्धदास ने मेरे पिता को धोखा दिया है। सुभद्रा विचारने लगी कि अब क्या हो सकता है। जो कुछ हुआ सो हुआ। मैं अपना धर्म कभी नहीं छोड़ूँगी। धर्म अन्तरात्मा की वस्तु है। वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है। प्राणान्त कष्ट आने पर भी मैं धर्म पर दृढ़ रहूँगी। ऐसा निश्चय कर सुभद्रा पूर्व की भाँति अपना नित्यनियम आदि धार्मिक क्रियाएं करती रही।

उसके इन कार्यों को देख कर उसकी सासू बहुत क्रोधित हुई। वह उससे कहने लगी– मेरे घर में रह कर तेरा यह ढोंग नहीं चल सकता। तू इन सब को छोड़ दे, अन्यथा तुझे कड़ा दण्ड भोगना पड़ेगा।

जब उसकी सासू ने देखा कि इन बातों का उस पर कुछ भी असर न पड़ा तब उसने उस पर किसी प्रकार का लाञ्छन लगा कर उसे अपने मार्ग पर लाने का निश्चय किया।

एक दिन एक जिनकल्पी मुनिराज उधर आ निकले। भिक्षा के लिए उन्होंने सुभद्रा के घर में प्रवेश किया। भक्तिपूर्वक वन्दना कर सुभद्रा ने उन्हें आहार वहराया। 'फूस के गिर जाने से मुनिराज की आंख में से पानी गिर रहा है' यह देख कर सुभद्रा ने बड़ी सावधानी से अपनी जीभ द्वारा फूस बाहर निकाल दिया। ऐसा करते समय सुभद्रा के ललाट पर लगी हुई कुंकुम की बिन्दी मुनिराज के ललाट पर लग गई। उसकी सासू ने अपनी इच्छापूर्ति के

लिये यह अवसर ठीक समझा। उसने मुनिराज के ललाट की बिन्दी की ओर संकेत करके बुद्धदास से कहा—पुत्र! बहू के दुराचार का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह देख कर बुद्धदास को बहुत दुःख हुआ। वह सुभद्रा को दुराचारिणी समझने लगा। सुभद्रा ने सारी सत्य बात कह सुनाई। फिर भी बुद्धदास का सन्देह दूर नहीं हुआ। उसने सुभद्रा के साथ अपने सारे सम्बन्ध तोड़ दिये।

सुभद्रा ने विचार किया कि मेरे साथ साथ जैन मुनि पर भी कलंक आता है। इसलिए मुझे इस कलंक को अवश्य दूर करना चाहिए। तेले का तप करके वह काउसग्ग में स्थित हो गई। तीसरे दिन मध्य रात्रि में शासन देवी प्रकट होकर कहने लगी—सुभद्रे! तेरा शील अखण्डित है। धर्म पर तेरी दृढ़ श्रद्धा है। मैं तुझ पर प्रसन्न हुई हूँ। कोई वर मांग। सुभद्रा ने कहा—देवि! मुझे किसी वर की आवश्यकता नहीं है। मेरे सिर पर आया हुआ कलंक दूर होना चाहिये। 'तथास्तु' कह कर देवी अन्तर्ध्यान होगई।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब द्वाररक्षक शहर के दरवाजे उघाड़ने लगे तो वे उन्हें नहीं खोल सके। द्वार वज्रमय होगये। अनेक प्रयत्न करने पर भी जब दरवाजे नहीं खुले तो राजा के पास जाकर उन्होंने सारी हकीकत कही। राजा ने कहा—शहर के लुहारों और सुथारों को बुला कर दरवाजों को खुलवा लो। सेवकों ने ऐसा ही किया किन्तु दरवाजे न खुले। तब राजा ने आज्ञा दी कि हाथियों को छोड़ कर दरवाजों को तुड़वा दो। मदोन्मत्त हाथी छोड़े गये। उन्होंने पूरी ताकत लगा दी किन्तु दरवाजे टस से मस न हुए। अब तो राजा और प्रजा दोनों की चिन्ता काफी बढ़ गई। इसी समय एक आकाशवाणी हुई—

'कोई सती कच्चे सूत के धागे से चलनी को बाँध कर कूए से जल

निकाल कर दरवाजों पर छिड़के तो दरवाजे तत्काल खुल जावेंगे।'

आकाशवाणी को सुन कर राजा ने शहर में घोषणा करवाई कि 'जो सती इस काम को पूरा करेगी राज्य की ओर से उसका बड़ा भारी सन्मान किया जावेगा।'

निर्धारित किये हुए कुँए पर लोगों की भारी भीड़ जमा होने लगी। सभी उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से देखने लगे कि देखें कौन सती इस कार्य को पूरा करती है। राजसन्मान और यश प्राप्त करने की इच्छा से अनेक स्त्रियों ने कुँए से पानी निकालने का प्रयत्न किया किन्तु सब व्यर्थ रहा। कच्चे सूत से बाँध कर चलनी जब कुंए में लटकाई जाती तो सूत टूट जाने से चलनी कुंए में गिर पड़ती अथवा कभी किसी की चलनी जल तक पहुँच भी जाती तो वापिस खींचते समय सारा जल छिद्रों से निकल जाता। राजा की आज्ञा से रानियों ने भी जल निकालने का प्रयत्न किया किन्तु वे भी सफल न हो सकीं। अब तो राजा को बहुत निराशा हुई।

राजा की घोषणा सुन कर सुभद्रा अपनी सासू के पास आई और जल निकालने के लिये कुंए पर जाने की आज्ञा मांगी। क्रुद्ध होती हुई सासू ने कहा- बस रहने दो, तुम कितनी सती हो मैं अच्छी तरह जानती हूँ। अपने घर में ही बैठी रहो। वहाँ जाकर सब लोगों के सामने हंसी क्यों करवाती हो? सुभद्रा ने विनय पूर्वक कहा- आप मुझे आज्ञा दीजिए। आपके आशीर्वाद से मैं अवश्य सफल होऊँगी। सुभद्रा का विशेष आग्रह देख कर सासू ने अनिच्छापूर्वक आज्ञा दे दी।

सुभद्रा कुंए पर आई। कच्चे सूत से चलनी बाँध कर वह आगे बढ़ी। सब लोग टकटकी बाँध कर निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। सुभद्रा ने चलनी को कुंए में लटकाया और जल से भर कर बाहर खींच लिया।

सुभद्रा के इस आश्चर्यजनक कार्य को देख कर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। राजा और प्रजा में हर्ष छा गया। लोग सुभद्रा के सतीत्व की प्रशंसा करने लगे। सती सुभद्रा की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा।

जयध्वनि के बीच सती एक दरवाजे की ओर बढ़ी। जल छिड़कते ही दरवाजा खुल गया। इस तरह सती ने शहर के तीन दरवाजे खोल दिये। चौथा दरवाजा अन्य किसी सती की परीक्षा के लिये छोड़ दिया।

सती सुभद्रा के सतीत्व की चारों ओर प्रशंसा फैल गई। राजा ने सती का यथेष्ट सन्मान किया और धूमधाम के साथ उसे घर पहुँचाया। सुभद्रा की सासू ने तथा उसके सारे परिवार वालों ने भी सारी बातें सुनीं। उन्होंने भी सुभद्रा के सतीत्व की प्रशंसा की और अपने अपने अपराध के लिये उससे क्षमा माँगी। सती के प्रयत्न से बुद्धदास तथा उसके माता पिता एवं परिवार के अन्य लोगों ने जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया।

अब सुभद्रा का सांसारिक जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा। पति, सासू तथा सम्बन्धी उसका सत्कार करने लगे। उसे किसी प्रकार का अभाव नहीं रहा, किन्तु सुभद्रा सांसारिक वासनाओं में ही फंसी रहना नहीं चाहती थी। उसे संसार की अनित्यता का भी ज्ञान था, इसलिये अपने सासू, ससुर तथा पति की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा ले ली। शुद्ध संयम का पालन करती हुई अनेक वर्षों तक विचर विचर कर भव्य प्राणियों का कल्याण करती रही। अन्त में केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पधार गई।

(११) शिवा

प्राचीन समय में विशाला नाम की एक विशाल और सुन्दर नगरी थी। वहाँ चेटक राजा राज्य करता था। उसके सात कन्याएं थीं। उन में से एक का नाम शिवा था। जब वह विवाह के योग्य हुई तब राजा चेटक ने उस का विवाह उज्जैन के महाराज चण्ड-प्रद्योतन के साथ कर दिया।

शिवा देवी जिस प्रकार शरीर से सुन्दर थी उसी प्रकार गुणों से भी वह सुन्दर थी। विवाह के बाद उज्जैन में आकर वह अपने पति के साथ सुखपूर्वक समय बिताने लगी। अपने पति के विचारों का वह वैसे ही साथ देती जैसे छाया शरीर का साथ देती है। अवसर आने पर एक योग्य मन्त्री के समान उचित सलाह देने में भी वह न हिचकती थी। इन सब गुणों से राजा उसे बहुत मानने लगा और उसे अपनी पटरानी बना दिया।

राजा के प्रधान मन्त्री का नाम भूदेव था। इन दोनों में परस्पर इतना प्रेम था कि एक दूसरे से थोड़ी देर के लिये भी कोई अलग होना नहीं चाहता था। किसी भी बात में राजा मन्त्री पर अविश्वास नहीं करता था। यहाँ तक कि अन्तःपुर में भी राजा अपने साथ उसे निःशङ्क ले जाता था। इस कारण रानी शिवा देवी का भी उसके साथ परिचय हो गया। अपने पति की उस पर इतनी ज्यादह कृपा देख कर वह भी उसका उचित सत्कार करने लगी। मन्त्री का मन मलिन था। उसने इस सत्कार का दूसरा ही अर्थ लगाया। वह रानी को अपने जाल में फंसाने की चेष्टा करने लगा। रानी की मुख्य दासी को उसने अपनी ओर कर लिया। दासी के द्वारा अपना बुरा अभिप्राय रानी के सामने रखा।

रानी विचार करने लगी कि पुरुषों का हृदय कितना मलिन

होता है। कामान्ध व्यक्ति उचित अनुचित का कुछ भी विचार नहीं करते। रानी ने दासी को ऐसा डाँटा कि वह काँपने लगी। हाथ जोड़ कर उसने अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी।

अपनी युक्ति को असफल होते देख कर मन्त्री बहुत निराश हुआ। अब उसने रानी को बलपूर्वक प्राप्त करने का निश्चय किया। इसके लिये वह कोई अवसर देखने लगा। एक दिन किसी अन्य राजा से मिलने के लिये राजा चण्डप्रद्योतन अपनी राजधानी से बाहर गया। अपने साथ चलने के लिए राजा ने भूदेव मन्त्री को भी कहा किन्तु बीमारी का बहाना करके वह वहीं रह गया। रानी शिवा देवी को प्राप्त करने का उसे यह अवसर उचित प्रतीत हुआ। घर से रवाना होकर वह राजमहल में पहुँचा और निःसंकोच भाव से वह अन्तःपुर में चला गया। रानी शिवा देवी के पास जाकर उसने अपनी दुष्ट भावना उसके सामने प्रकट की। उसने रानी को अनेक प्रलोभन दिये और जन्म भर उसका दास बने रहने की प्रतिज्ञा की।

रानी को अपना शील धर्म प्राणों से भी ज्यादह प्यारा था। वह पतिव्रत धर्म में दृढ़ थी। उसने निर्भर्त्सना पूर्वक मन्त्री को अन्तःपुर से निकलवा दिया। घर आने पर मन्त्री को अपने दुष्कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगा कि जब राजा को मेरे कार्य का पता लगेगा तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी। इसी चिन्ता में वह बीमार पड़ गया।

बाहर से लौटते ही राजा ने मन्त्री को बुलाया। वह डर के मारे कांपने लगा। बीमारी की अधिकता बता कर उसने राजा के सामने उपस्थित होने में असमर्थता प्रकट की। राजा को मन्त्री के बिना चैन नहीं पड़ता। वह सन्ध्या के समय शिवा देवी को साथ लेकर मन्त्री के घर पहुँच गया। अब तो मन्त्री का डर और भी बढ़ गया।

मन्त्री को शय्या पर पड़ा हुआ देख कर राजा को बहुत दुःख हुआ। प्रेम की अधिकता से वह स्वयं उसकी सेवा शुश्रूषा में लग गया। पति को सेवा करते हुए देख कर रानी शिवा देवी भी उसकी सेवा में लग गई। रानी का शुद्ध और गम्भीर हृदय जान कर मन्त्री अपने नीच कार्य का पश्चात्ताप करने लगा। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। रानी उसके भावों को समझ गई। उसे सान्त्वना देती हुई वह कहने लगी– भाई! पश्चात्ताप से पाप हल्का हो जाता है। एक बार भूल करके भी यदि मनुष्य अपनी भूल को समझ कर सन्मार्ग पर आ जाय तो वह भूला हुआ नहीं गिना जाता। मन्त्री ने शिवा देवी के पैरों में गिर कर क्षमा मांगी।

एक समय नगर में अग्नि का भयंकर उपद्रव हुआ। अनेक उपाय करने पर भी वह शान्त न हुआ। प्रजा में हाहाकार मच गया। तब इस प्रकार की आकाशवाणी हुई कि कोई शीलवती स्त्री अपने हाथ से चारों दिशाओं में जल छिड़के तो यह अग्नि का उपद्रव शान्त हो सकता है। आकाशवाणी को सुन कर बहुत सी स्त्रियों ने ऐसा किया किन्तु उपद्रव शान्त न हुआ। महल की छत पर चढ़ कर शिवादेवी ने चारों दिशाओं में जल छिड़का। जल छिड़कते ही अग्नि का उपद्रव शान्त हो गया। प्रजा में हर्ष छा गया। 'महासती शिवादेवी की जय' की ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उज्जयिनी नगरी के बाहर उद्यान में पधारे। रानी शिवा देवी सहित राजा चण्डप्रद्योतन भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिए गया। भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया। शील का माहात्म्य बताते हुए भगवान् ने फरमाया–

देवदाणवगन्धव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा।
बम्भयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करन्ति तं॥

अर्थात्– दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले पुरुषों को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं।

धर्मोपदेश सुन कर सभी लोग अपने स्थान को वापिस चले गये। सती शिवा देवी को संसार से विरक्ति होगई। राजा चण्डप्रद्योतन की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। वह विविध प्रकार की कठोर तपस्या करती हुई विचरने लगी। थोड़े ही समय में सब कर्मों का क्षय करके उसने मोक्ष प्राप्त किया।

(१२) कुन्ती

प्राचीन समय में शौर्यपुर नाम का नगर था। वहाँ राजा अन्धक वृष्णि राज्य करता था। पटरानी का नाम सुभद्रा था। उसकी कुक्षि से समुद्र विजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान्, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव ये दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये दस दशार्ह कहलाते थे। इनके दो बहनें थीं– कुन्ती और माद्री। दोनों का रूप लावण्य अद्भुत था।

हस्तिनापुर में पाण्डु राजा राज्य करता था। वह महारूपवान्, पराक्रमी और तेजस्वी था। महाराज अन्धक वृष्णि ने अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह पाण्डु राजा के साथ कर दिया। ये दोनों रानियाँ बड़ी ही विदुषी, धर्मपरायणा और पतिव्रता थीं। इनमें सौतिया डाह बिल्कुल न था। वे दोनों प्रेमपूर्वक रहती थीं। पाण्डु राजा दोनों रानियों के साथ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा। कुछ समय पश्चात् कुन्ती गर्भवती हुई। गर्भ समय पूरा होने पर कुन्ती ने एक महान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। पुत्रजन्म से पाण्डु राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। बड़ी धूमधाम से उसने पुत्र जन्मोत्सव मनाया और पुत्र का नाम युधिष्ठिर रखा। इसके पश्चात् कुन्ती की कुक्षि से क्रमशः भीम और अर्जुन नाम के दो पुत्र और उत्पन्न हुए। रानी माद्री की कुक्षि से नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र

हुए। ये पाँचों पाण्डव कहलाते थे। श्रेष्ठ गुरु के पास इन्हें उत्तम शिक्षा दिलाई गई। थोड़े ही समय में ये पाँचों शस्त्र और शास्त्र दोनों विद्याओं में प्रवीण हो गए।

एक समय पाण्डु राजा सैर करने के लिये जंगल में गये। रानी कुन्ती और माद्री दोनों भी साथ में थीं। वसन्तक्रीड़ा करता हुआ राजा पाण्डु आनन्द पूर्वक समय बिता रहा था। इसी समय अकस्मात् हृदय की गति बन्द हो जाने से उसकी मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक वज्रपात से रानी कुन्ती और माद्री को बहुत शोक हुआ। जब यह खबर नगर में पहुँची तो चारों ओर कुहराम छा गया। पाण्डव शोक समुद्र में डूब गये। उन्होंने अपने पिता का यथाविधि अग्नि संस्कार किया। माता कुन्ती और माद्री को महलों में लाकर उनकी विनय भक्ति करते हुए वे अपना समय बिताने लगे। योग्य वय होने पर पाँचों पाण्डवों का विवाह कम्पिलपुर के राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के साथ हुआ। द्रौपदी धर्मपरायणा एवं पतिव्रता थी।

राजा पाण्डु के बड़े भाई का नाम धृतराष्ट्र था। वे जन्मान्ध थे। उनकी पत्नी का नाम गान्धारी था। उनके दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे। जो कौरव कहलाते थे। दुर्योधन बड़ा कुटिल था। वह पाण्डवों से ईर्ष्या रखता था। वह उनका राज्य छीनना चाहता था। उसने पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए तैयार कर लिया। पाण्डवों ने अपने राज्य को दाँव पर रख दिया। वे जुए में हार गये। कौरवों ने उनका राज्य छीन लिया। द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव वन में चले गये। वहाँ उन्हें अनेक कष्ट सहन करने पड़े। पुत्रवियोग से माता कुन्ती बहुत उदासीन रहने लगी।

एक समय कृष्ण वासुदेव कुन्ती देवी से मिलने के लिये आये। प्रणाम करके उन्होंने कहा—भूआजी! आनन्द मंगल तो है? कुन्ती ने उत्तर दिया—वत्स! तुम्हीं सोचो—तुम्हारे भाई पाँचों

पाण्डव वन में कष्ट सहन कर रहे हैं। राजमहलों में पली हुई द्रौपदी भी उनके साथ कष्ट सहन कर रही है। उनका वियोग मुझे दुखी कर रहा है। ऐसी अवस्था में मेरे लिये आनन्द मंगल कैसा ? कृष्ण ने उसे सान्त्वना दी और शीघ्र ही उसके के दुःख को दूर करने का आश्वासन दिया।

कृष्ण वासुदेव दुर्योधन आदि कौरवों के पास आये। कुछ देकर पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेने के लिये उन्हें बहुतेरा समझाया किन्तु कौरव न माने। परिणामस्वरूप महाभारत युद्ध हुआ। लाखों आदमी मारे गये। पाण्डवों की विजय हुई। युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठे। कुन्ती राजमाता और द्रौपदी राजरानी बनी। न्याय और नीतिपूर्वक राज्य करने से प्रजा महाराज युधिष्ठिर को धर्मराज कहने लगी।

युद्ध में दुर्योधन आदि सभी कौरव मारे गये थे। पुत्रों के शोक से दुखी होकर धृतराष्ट्र और गान्धारी वन में जाकर रहने लगे। उनके शोक सन्तप्त हृदय को सान्त्वना देने तथा उनकी सेवा करने के लिये कुन्ती भी उनके पास वन में जाकर रहने लगी।

कुछ समय पश्चात् कुन्ती ने दीक्षा लेने के लिये अपने पुत्रों से अनुमति माँगी। पाण्डवों के इन्कार करने पर कुन्ती ने उन्हें समझाते हुए कहा— पुत्रो! जो जन्म लेकर इस संसार में आया है एक न एक दिन उसे अवश्य यहाँ से जाना होगा। यहाँ सदा किसी की न बनी रही है और न सदा बनी रहेगी। कल यहाँ कौरवों का राज्य था आज उनका नाम निशान भी नहीं है। आत्मशान्ति न राज्य से मिलती है, न धन से, न कुटुम्ब से और न वैभव से। आत्मशान्ति तो त्याग से ही मिल सकती है। मैंने राजरानी बन कर पति सुख देखा, तुम्हारे वन में चले जाने पर पुत्रवियोग का कष्ट सहन किया। तुम्हारे वापिस आने पर हर्षित हुई।

तुम्हारे राजसिंहासन बैठने पर मैं राजमाता बनी। मैंने संसार के सारे रंग देख लिये किन्तु मुझे आत्मिक शान्ति का अनुभव न हुआ। ये सांसारिक सम्बन्ध मुझे बन्धन मालूम पड़ते हैं। मैं इन्हें तोड़ डालना चाहती हूँ।

माता कुन्ती के उत्कृष्ट वैराग्य को देख कर पाण्डवों ने उसे दीक्षा लेने की अनुमति दे दी। पुत्रों की अनुमति प्राप्त कर कुन्ती ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। विविध प्रकार की कठोर तपस्या करती हुई कुन्ती आर्या विचरने लगी। थोड़े ही समय में तपस्या द्वारा सभी कर्मों का क्षय कर वह मोक्ष में पधार गई।

(१२) दमयन्ती

विदर्भ देश में कुंडिनपुर (कुन्दनपुर) नाम का नगर था। वहाँ भीम राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम पुष्पवती था। उसकी कुक्षि से एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम दमयन्ती रक्खा गया। उसका रूप सौन्दर्य अनुपम था। उसकी बुद्धि तीव्र थी। थोड़े ही समय में वह स्त्री की चौंसठ कलाओं में प्रवीण होगई।

'दमयन्ती का विवाह उसकी प्रकृति, रूप, गुण आदि के अनुरूप वर के साथ हो' ऐसा सोच कर राजा भीम ने स्वयंवर द्वारा उसका विवाह करने का निश्चय किया। विविध देशों के राजाओं के पास आमन्त्रण भेजे। निश्चित तिथि पर अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में एकत्रित हो गए। कौशलदेश (अयोध्या) का राजा निषध भी अपने पुत्र नल और कुबेर के साथ वहाँ आया।

हाथ में माला लेकर एक सखी के साथ दमयन्ती स्वयंवर मण्डप में आई। राजाओं का परिचय प्राप्त करती हुई दमयन्ती धीरे धीरे आगे बढ़ने लगी। राजकुमार नल के पास आकर उसने उनके बल पराक्रम आदि का परिचय प्राप्त किया। दर्पण में पड़ने वाले

उनके शरीर का प्रतिबिम्ब देखा। रूप और गुण में नल अद्वितीय था। दमयन्ती ने उसे सर्व प्रकार से अपने योग्य वर समझा। उसने राजकुमार नल के गले में वरमाला डाल दी। योग्य वर के चुनाव से सभी को प्रसन्नता हुई। सभी ने नव वरवधू पर पुष्पों की वर्षा की। राजा भीम ने यथाविधि दमयन्ती का विवाह राजकुमार नल के साथ कर दिया। यथोचित आदर सत्कार कर राजा भीम ने उन्हें विदा किया।

राजा निषध नव वरवधू के साथ आनन्दपूर्वक अपनी राजधानी अयोध्या में पहुँच गये। पुत्र के विवाह की खुशी में राजा निषध ने गरीबों को बहुत दान दिया। कुछ समय पश्चात् राजा को संसार से विरक्ति होगई। अपने ज्येष्ठ पुत्र नल को राज्य का भार सौंप कर राजा ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। मुनि बन कर वे कठोर तपस्या करते हुए आत्मकल्याण करने लगे।

नल न्याय नीतिपूर्वक राज्य करने लगा। प्रजा को वह पुत्रवत् प्यार करता था। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। नल राजा का छोटा भाई कुबेर इस को सहन न कर सका। राजा नल से उसका राज्य छीन लेने के लिये वह कोई उपाय सोचने लगा। कुबेर जुआ खेलने में बड़ा चतुर था। उसका फेंका हुआ पासा उल्टा नहीं पड़ता था। उसने यही निश्चय किया कि नल को जुआ खेलने के लिये कहा जाय और शर्त में उसका राज्य दाव पर रख दिया जाय। फिर मेरा मनोरथ सिद्ध होने में कुछ देर न लगेगी।

एक दिन कुबेर नल के पास आया। उसने जुआ खेलने का प्रस्ताव रक्खा। राजा नल को भी जुआ खेलने का बहुत शौक था। उसने कुबेर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसके लिये एक दिन नियत किया गया। दोनों भाई जुआ खेलने बैठे। खेलते खेलते कुबेर ने कहा— भाई! इस तरह खेलने में आनन्द नहीं

आता। कुछ शर्त रखिये। राजा नल ने अपना सारा राज्य दाव पर रख दिया। कुबेर का पासा सीधा पड़ा। वह जीत गया। शर्त के अनुसार अब राज्य का स्वामी कुबेर हो गया।

राजा नल राजपाट को छोड़ कर जंगल में जाने को तैयार हुआ। दमयन्ती भी उसके साथ वन जाने को तैयार हुई। राजा नल ने उसे बहुत समझाया और कहा- प्रिये! पैदल चलना, भूख प्यास को सहन करना, सर्दी गर्मी में समभाव रखना, जंगली जानवरों से भयभीत न होना, इस प्रकार के और भी अनेक कष्ट जंगल में सहन करने पड़ते हैं। तुम राजमहलों में पली हुई हो। इन कष्टों को सहन न कर सकोगी। इसलिये तुम्हारे लिये यही उचित है कि तुम अपने पिता के यहाँ चली जाओ।

दमयन्ती ने कहा- स्वामिन्! आप क्या कह रहे हैं? क्या छाया शरीर से दूर रह सकती है? मैं आपसे अलग नहीं रह सकती। जहाँ आप हैं वहीं मैं हूँ। मैं आपके साथ वन में चलूँगी।

दमयन्ती का विशेष आग्रह देख कर नल ने उसे अपने साथ चलने के लिए कह दिया। नल और दमयन्ती ने वन की ओर प्रस्थान किया। चलते चलते वे एक भयंकर जंगल में पहुँच गये। सन्ध्या का समय हो चुका था और वे भी थक गए थे। इसलिए रात बिताने के लिए वे एक वृक्ष के नीचे ठहर गए। रास्ते की थकावट के कारण दमयन्ती को सोते ही नींद आगई। नल अपने भाग्य पर विचार कर रहा था। उसे नींद नहीं आई। वह सोचने लगा—दमयन्ती वन के कष्टों को सहन न कर सकेगी। मोह के कारण यह मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती है। इसलिए यही अच्छा है कि मैं इसे यहाँ सोती हुई छोड़ कर चला जाऊँ। ऐसा विचार कर नल ने दमयन्ती की साड़ी के एक किनारे पर लिखा- प्रिये! बाएं हाथ की ओर तुम्हारे पीहर कुण्डिनपुर का रास्ता है। तुम वहाँ चली

जाना। मुझे मत ढूँढना। मैं तुम्हें नहीं मिल सकूँगा। ऐसा लिख कर सोती हुई दमयन्ती को छोड़ कर नल आगे जंगल में चला गया।

कुछ आगे जाने पर नल ने जंगल में एक जगह जलती हुई आग देखी। उसमें से आवाज आ रही थी– हे इक्ष्वाकुकुलनन्दन राजा नल! तू मेरी रक्षा कर। अपना नाम सुन कर नल चौंक पड़ा। वह तेजी से उस ओर बढ़ा। आगे जाकर क्या देखता है कि जलती हुई अग्नि के बीच एक सांप पड़ा हुआ है और वह मनुष्य की वाणी में अपनी रक्षा की पुकार कर रहा है। राजा नल ने तत्काल साँप को अग्नि से बाहर निकाला। बाहर निकलते ही सर्प ने राजा नल के दाहिने हाथ पर डंक मारा जिससे वह कुबड़ा बन गया। अपने शरीर को विकृत देख कर नल चिन्ता करने लगा। राजा को चिन्तित देख कर सर्प ने कहा– हे वत्स! तू चिन्ता मत कर। मैं तेरा पिता निषध हूँ। संयम का पालन कर मैं ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ हूँ। तू अभी अकेला है। तुझे पहिचान कर कोई शत्रु उपद्रव न करे इसलिए मैंने तेरा रूप विकृत बना दिया है। यह ले मैं तुझे रूपपरावर्तिनी विद्या देता हूँ जिससे तू अपनी इच्छानुसार रूप बना सकेगा। पूर्वभव के अशुभ कर्मों के उदय से कुछ काल के लिए तुझे यह कष्ट प्राप्त हुआ है। बारह वर्ष के बाद तेरा दमयन्ती से पुनर्मिलन होगा और तुझे अपना राज्य वापिस प्राप्त होगा। ऐसा कह कर सर्परूपधारी देव अन्तर्ध्यान होगया।

राजा नल वहाँ से आगे बढ़ा। भयङ्कर जंगली जानवरों का सामना करता हुआ वह जंगल से बाहर निकला। नगर की ओर प्रयाण करता हुआ वह सुंसुमार नगर में जा पहुँचा।

सुँसुमार नगर में दधिपर्ण राजा राज्य करता था। एक समय उसका पट्टहस्ती मदोन्मत्त होकर गजबन्धनस्तम्भ को तोड़ कर भाग निकला। औरतों, बच्चों और मनुष्यों को कुचलता हुआ

हाथी पूरे वेग से दौड़ा जा रहा था। इससे नगर में हाहाकार मच गया। हाथी को वश में करने के लिए बहुत बड़ी सम्पत्ति देने के लिए राजा ने घोषणा करवाई। राजसन्मान और सम्पत्ति को सभी लोग चाहते थे किन्तु हाथी का सामना करना साक्षात् मृत्यु थी। मरना कोई नहीं चाहता था।

नल हाथी को पकड़ने की कला जानता था। इसलिए वह आगे बढ़ा। एक सफेद कपड़े को बांस पर लपेट कर हाथी के सामने खड़ा कर दिया और नल उसके पास छुप कर खड़ा हो गया। कपड़े को आदमी समझ कर उसे मारने के लिए ज्यों ही हाथी दौड़ कर उधर आया त्यों ही पास में छुपा हुआ नल हाथी का कान पकड़ कर उसकी गर्दन पर सवार हो गया। उसने हाथी के मर्मस्थान पर ऐसा मुष्टिप्रहार किया जिससे उसका मद तत्काल उतर गया। शान्त होकर वह जहाँ का तहाँ खड़ा होगया। नल ने उसे आलानस्तम्भ (हाथी के बांधने की जगह) में बाँध दिया।

राजा और प्रजा का भय दूर हुआ। सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। राजा दधिपर्ण बहुत सन्तुष्ट हुआ। वस्त्राभरण से सन्मानित करके राजा ने उस कुबड़े को अपने पास बिठाया। राजा उसका परिचय पूछने लगा। नल ने अपना वास्तविक परिचय देना ठीक नहीं समझा। उसने कहा– मैंने अयोध्या नरेश नल के यहाँ रसोइए का काम किया है। राजा नल सूर्य की कृपा से सूर्यपाक रसवती बनाना जानते थे। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने मुझे भी सिखा दिया है। तब राजा दधिपर्ण ने कहा तुम हमारे यहाँ रहो और रसोइए का काम करो। उसने राजा की बात मान ली और काम करने लगा।

राजा नल जब दमयन्ती को छोड़ कर चला गया तो कितनी ही देर तक दमयन्ती सुखपूर्वक सोती रही। रात्रि के पिछले पहर में उसने एक स्वप्न देखा– 'फलों से लदा हुआ एक आम्रवृक्ष

है। फल खाने की इच्छा से वह उस पर चढ़ी। उसी समय एक मदोन्मत्त हाथी आया और उसने आम्रवृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया। वह भूमि पर गिर पड़ी। हाथी उसकी ओर लपका और उसे अपनी सूँड में उठा कर भूमि पर पटका।

इस भयंकर स्वप्न को देख कर वह चौंक पड़ी। उठ कर उसने देखा तो राजा नल वहाँ पर नहीं था। वह उसे ढूँढ़ने के लिए इधर उधर जंगल में घूमने लगी किन्तु कहीं पता नहीं लगा। इतने में उसकी दृष्टि अपनी साड़ी के कोने पर पड़ी। राजा नल के लिखे हुए अक्षरों को देख कर वह मूर्च्छित होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। कितनी ही देर तक वह इसी अवस्था में पड़ी रही। वन का शीतल पवन लगने पर उसकी मूर्च्छा दूर हुई। अपने भाग्य को बारबार कोसती हुई वह अपने देखे हुए स्वप्न पर विचार करने लगी– आम्रवृक्ष के समान मेरे पति देव हैं। आम्रफल के समान राज्यलक्ष्मी है। मदोन्मत्त हाथी के समान कुबेर है। मुझे भूमि पर पछाड़ने का मतलब- मेरे लिये पतिवियोग है।

बहुत देर तक विचार करने के पश्चात् दमयन्ती ने यही निश्चय किया कि अब मुझे पति द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही स्वीकार करना चाहिये। ऐसा सोच कर उसने कुण्डिनपुर की ओर प्रयाण किया। मार्ग बहुत विकट था। भयंकर जंगली जानवरों का सामना करती हुई दमयन्ती आगे बढ़ने लगी।

उन दिनों यशोभद्र मुनि ग्रामानुग्राम विचर कर धर्मोपदेश द्वारा जनता का कल्याण कर रहे थे। एक समय वे अयोध्या में पधारे। राजा कुबेर अपने पुत्रसहित धर्मोपदेश सुनने के लिये आया। धर्मोपदेश सुन कर कुबेर के पुत्र राजकुमार सिंहकेसरी को वैराग्य उत्पन्न होगया। पिता की आज्ञा लेकर उसने यशोभद्र मुनि के पास दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कर्मों का क्षय करने के लिये वे

कठोर तपस्या करते हुए विचरने लगे। एक समय गुरु की आज्ञा लेकर सूर्य की आतापना लेने के लिये वे जंगल में गये। वहाँ जाकर निश्चल रूप से ध्यान में खड़े हो गये। परिणामों की विशुद्धता के कारण वे क्षपकश्रेणी में चढ़े और घाती कर्मों का क्षय कर उन्होंने तत्काल केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर लिए। उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिये देव आने लगे। यह दृश्य देख कर दमयन्ती भी उधर गई। वन्दना नमस्कार करके उसने अपने पूर्व-भव के विषय में पूछा। केवली भगवान् ने फरमाया—

इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के अन्दर ममण नाम का एक राजा था। उसकी स्त्री का नाम वीरमती था। एक समय राजा और रानी दोनों कहीं बाहर जाने के लिये तैयार हुए। इतने में सामने एक मुनि आते हुए दिखाई दिये। राजा रानी ने इसे अपशकुन समझा। अपने सिपाहियों द्वारा मुनि को पकड़वा लिया और बारह घन्टे तक उन्हें वहाँ रोक रक्खा। इसके पश्चात् राजा और रानी का क्रोध शान्त हुआ। उन्हें सद्बुद्धि आई। मुनि के पास आकर वे अपने अपराध के लिये बारबार क्षमा मांगने लगे। मुनि ने उन्हें धर्मोपदेश दिया जिससे राजा और रानी दोनों ने जैनधर्म स्वीकार किया और वे दोनों शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करते हुए समय बिताने लगे। आयुष्य पूर्ण होने पर ममण का जीव राजा नल हुआ है और रानी वीरमती का जीव तू दमयन्ती हुई है। निष्कारण मुनिराज को बारह घन्टे तक रोक रखने के कारण इस जन्म में तुम पति पत्नी का बारह वर्ष तक वियोग रहेगा।

यह फरमाने के बाद केवली भगवान् के शेष चार अघाती कर्म नष्ट हो गए और वे उसी समय मोक्ष पधार गये।

केवली भगवान् द्वारा अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुन कर दम-यन्ती कर्मों की विचित्रता पर बारबार विचार करने लगी। अशुभ

कर्म बाँधते समय प्राणी खुश होता है किन्तु जब उनका अशुभ फल उदय में आता है तब वह महान् दुखी होता है। हँसते हँसते प्राणी जिन कर्मों को बाँधते हैं, रोने पर भी उनका छुटकारा नहीं होता। किस रूप में कर्म बंधते हैं और किस रूप में उदय में आते हैं यही कर्मों की विचित्रता है।

जंगल में आगे चलती हुई दमयन्ती को धनदेव नाम का एक सार्थपति मिला। वह अचलपुर जा रहा था। दमयन्ती भी उसके साथ हो गई। धनदेव ने उसका परिचय जानना चाहा किन्तु दमयन्ती ने अपना वास्तविक परिचय न दिया। उसने कहा कि मैं दासी हूँ। कहीं नौकरी करना चाहती हूँ। धनदेव ने विशेष छानबीन करना उचित न समझा। धीरे धीरे वे सब लोग अचलपुर पहुँचे। धनदेव का सार्थ (काफिला) नगर के बाहर ठहर गया।

अचलपुर में ऋतुपर्ण राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चन्द्रयशा था। उसे मालूम पड़ा कि नगर के बाहर एक सार्थ ठहरा हुआ है। उसमें एक कन्या है। वह देवकन्या के समान सुन्दर है। कार्य में बहुत होशियार है। उसने सोचा यदि उसे अपनी दानशाला में रख दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। रानी ने नौकरों को भेज कर उसे बुलाया और बातचीत करके उसे अपनी दानशाला में रख लिया।

चन्द्रयशा दमयन्ती की मौसी थी। चन्द्रयशा ने उसे नहीं पहिचाना। दमयन्ती अपनी मौसी और मौसा को भलि प्रकार पहिचानती थी किन्तु उसने अपना परिचय देना उचित न समझा। वह दानशाला में काम करने लग गई। आने जाने वाले अतिथियों को खूब दान देती हुई ईश्वरभजन में अपना समय बिताने लगी।

एक समय कुण्डिनपुर का एक ब्राह्मण अचलपुर आया। राजा रानी ने उचित सत्कार करके महाराजा भीम और रानी पुष्पवती

का कुशल समाचार पूछा। कुशल समाचार कहने के बाद ब्राह्मण ने कहा कि राजा भीम ने राजा नल और दमयन्ती की खोज के लिए चारों दिशाओं में अपने दूत भेज रखे हैं किन्तु अभी उनका कहीं भी पता नहीं लगा है। सुनते हैं कि राजा नल दमयन्ती को जंगल में अकेली छोड़ कर चला गया है। इस समाचार से राजा भीम की चिन्ता और भी बढ़ गई है। नल और दमयन्ती की बहुत खोज की किन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लगा। आखिर निराश होकर अब मैं वापिस कुण्डिनपुर लौट रहा हूँ।

भोजन करके ब्राह्मण विश्राम करने चला गया। शाम को घूमता हुआ ब्राह्मण राजा की दानशाला में पहुँचा। दान देती हुई कन्या को देख कर वह आगे बढ़ा। वह उसे परिचित सी मालूम पड़ी। नजदीक पहुँचने पर उसे पहिचानने में देर न लगी। दमयन्ती ने भी ब्राह्मण को पहिचान लिया।

ब्राह्मण ने जाकर रानी चन्द्रयशा को खबर दी। वह तत्काल दानशाला में आई और दमयन्ती से प्रेमपूर्वक मिली। न पहिचानने के कारण उसने दमयन्ती से दासी का काम लिया था इसलिए वह पश्चात्ताप करने लगी और दमयन्ती से अपने अपराध के लिए क्षमा मांगने लगी। रानी चन्द्रयशा दमयन्ती को साथ लेकर महलों में आई। इस बात का पता जब राजा ऋतुपर्ण को लगा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ।

इसके बाद ब्राह्मण की प्रार्थना पर राजा ऋतुपर्ण ने दमयन्ती को धूमधाम के साथ कुण्डिनपुर की ओर रवाना किया। यह खबर राजा भीम के पास पहुँची। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ सामन्तों को उसके सामने भेजा। महलों में पहुँच कर दमयन्ती ने मातापिता को प्रणाम किया। इसके पश्चात् उसने अपनी सारी दुःखकहानी कह सुनाई। किस तरह राजा नल उसे भयंकर वन में अकेली

सोती हुई छोड़ गया और किस किस तरह से उसे भयंकर जंगली जानवरों का सामना करना पड़ा, आदि वृत्तान्त सुन कर राजा और रानी का हृदय कांप उठा। उन्होंने दमयन्ती को सान्त्वना दी और कहा— पुत्रि! तू अब यहाँ शान्ति से रह। नल राजा का शीघ्र पता लगाने के लिए प्रयत्न किया जायगा। दमयन्ती शान्तिपूर्वक वहाँ रहने लगी। राजा नल की खोज के लिये राजा भीम ने चारों दिशाओं में अपने आदमियों को भेजा।

एक समय सुंसुमार नगर का एक व्यापारी कुंडिनपुर आया। बातचीत के सिलसिले में उसने राजा से बतलाया कि नल राजा का एक रसोइया हमारे नगर के राजा दधिपर्ण के यहाँ रहता है। वह सूर्यपाक रसवती बनाना जानता है। पास में बैठी हुई दमयन्ती ने भी यह बात सुनी। उसे कुछ विश्वास हुआ कि वह राजा नल ही होना चाहिये। व्यापारी ने फिर कहा वह रसोइया शरीर से कुबड़ा है किन्तु बहुत गुणवान् है। पागल हुए हाथी को वश में करने की विद्या भी वह जानता है। यह सुन कर दमयन्ती को पूर्ण विश्वास होगया कि वह राजा नल ही है किन्तु विद्या के बल से अपने रूप को उसने बदल रक्खा है, ऐसा मालूम पड़ता है।

दमयन्ती के कहने पर राजा भीम को भी विश्वास होगया किन्तु वे एक परीक्षा और करना चाहते थे। उन्होंने कहा राजा नल अश्वविद्या में विशेष निपुण हैं। यह परीक्षा और कर लेनी चाहिये। इससे पूरा निश्चय हो जायगा। फिर सन्देह का कोई कारण नहीं रहेगा। इसलिये मैंने एक उपाय सोचा है— यहाँ से एक दूत सुंसुमार नगर राजा दधिपर्ण के पास भेजा जाय। उसके साथ दमयन्ती के स्वयंवर की आमन्त्रणपत्रिका भेजी जाय। दूत को स्वयंवर की निश्चिततिथि के एक दिन पहले वहाँ पहुँचना चाहिए। यदि वह कुबड़ा राजा नल होगा तब तो अश्वविद्या द्वारा वह राजा दधिपर्ण

को यहाँ एक दिन में पहुँचा देगा। राजा भीम की यह युक्ति सब को ठीक जँची। उसी समय एक दूत को सारी बात समझा कर सुंसुमार नगर के लिये रवाना कर दिया।

चलता हुआ दूत कई दिनों में सुंसुमार नगर में पहुँचा। राजा के पास जाकर उसने आमन्त्रणपत्रिका दी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु उसे पढ़ते हुए राजा का चेहरा उदास होगया। कुण्डिनपुर बहुत दूर था और स्वयंवर में सिर्फ एक दिन बाकी था। राजा सोचने लगा अब कुण्डिनपुर कैसे पहुँचा जाय। राजा की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। नल भी अपने मन में विचारने लगा कि आर्यकन्या दमयन्ती दुबारा स्वयंवर कैसे करेगी। चल कर मुझे भी देखना चाहिये। ऐसा सोच कर उसने कहा महाराज! आप चिन्ता क्यों करते हैं? यदि आपकी इच्छा कुण्डिनपुर जाने की हो तो श्रेष्ठ घोड़ों वाला एक रथ मंगाइये। मैं अश्वविद्या जानता हूँ। अतः आपको आज ही कुण्डिनपुर पहुँचा दूँगा।

कुबड़े की बात सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसी समय रथ मंगाया। राजा उसमें बैठ गया। कुबड़ा सारथी बना। घोड़े हवा से बातें करने लगे। थोड़े ही समय में वे कुण्डिनपुर पहुँच गये। राजा भीम ने उनका उचित सन्मान करके उत्तम स्थान में ठहराया। राजा दधिपर्ण ने देखा कि शहर में स्वयंवर की कुछ भी तैयारी नहीं है फिर भी शान्तिपूर्वक वे अपने नियत स्थान पर ठहर गये।

अब राजा भीम और दमयन्ती को पूर्ण विश्वास होगया कि यह कुबड़ा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है किन्तु राजा नल ही है। राजा भीम ने शाम को उसे अपने महल में बुलाया। राजा ने उससे कहा हमने आपके गुणों की प्रशंसा सुन ली है तथा हमने स्वयं भी परीक्षा कर ली है। आप राजा नल ही हैं। अब हम लोगों पर कृपा कर

आप अपना असली रूप प्रकट कीजिए।

राजा भीम की बात के उत्तर में कुब्जरूपधारी नल ने कहा—राजन्! आप क्या कह रहे हैं? कहाँ राजा नल और कहाँ मैं? कहाँ उनका रूप सौन्दर्य और कहाँ मैं कुबड़ा। आप भ्रम में हैं। विपत्ति के मारे राजा नल कहीं जंगलों में भटक रहे होंगे। आप वहीं खोज करवाइये।

राजा भीम ने कहा—हस्तिविद्या, अश्वविद्या, सूर्यपाक रसवती विद्या आदि के द्वारा मुझे पूर्ण निश्चय होगया कि आप राजा नल ही हैं। राजन्! स्वजनों को अब विशेष कष्ट में डालना उचित नहीं है। ऐसा कहते हुए राजा का हृदय भर आया।

राजा नल भी अब ज्यादह देर के लिए अपने आप को न छिपा सके। तुरन्त रूपपरावर्तिनी विद्या द्वारा अपने असली रूप में प्रकट हो गए। राजा भीम, रानी पुष्पवती और दमयन्ती के हर्ष का पारावार न रहा। शहर में इस हर्ष समाचार को फैलते देर न लगी। प्रजा में खुशी छा गई। राजा दधिपर्ण भी वहाँ आया। न पहिचानने के कारण अपने यहाँ नौकर रखने के लिए उसने राजा नल से क्षमा माँगी।

जब यह खबर अयोध्या पहुँची तो वहाँ का राजा कुबेर तत्काल कुण्डिनपुर के लिए रवाना हुआ। जाकर अपने बड़े भाई नल के पैरों में गिरा और अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगने लगा। बड़े भाई नल को वन में भेजने के कारण उसे बहुत पश्चात्ताप हो रहा था। अयोध्या का राज्य स्वीकार करने के लिए वह नल से प्रार्थना करने लगा।

नल और दमयन्ती को साथ लेकर कुबेर अयोध्या की ओर रवाना हुआ। नल दमयन्ती का आगमन सुन कर अयोध्या की प्रजा उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी।

कुबेर ने राजगद्दी नल को सौंप दी। अब नल राजा हुआ और दमयन्ती महारानी बनी। न्याय नीतिपूर्वक राज्य करता हुआ राजा नल प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगा। कुछ समय पश्चात् महारानी दमयन्ती की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम पुष्कर रखा गया। जब राजकुमार पुष्कर युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसे राज्य का भार सौंप कर राजा नल और दमयन्ती ने दीक्षा ले ली।

जिन कर्मों ने नल दमयन्ती को वन वन भटकाया और अनेक कष्टों में डाला, नल और दमयन्ती ने उन्हीं कर्मों के साथ युद्ध करके उनका अन्त करने का निश्चय कर लिया।

कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन कर नल और दमयन्ती देवलोक में गये। वहाँ से चव कर मनुष्य भव में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

(१४) पुष्पचूला

गङ्गा नदी के तट पर पुष्पभद्र नाम का नगर था। वहाँ पुष्पकेतु राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पुष्पवती था। उनके दो सन्तान थीं, एक पुत्र और दूसरी पुत्री। पुत्र का नाम पुष्पचूल था और पुत्री का नाम पुष्पचूला। भाई बहिन में परस्पर बहुत स्नेह था।

पुष्पचूला में जन्म से ही धार्मिक संस्कार जमे हुए थे। सांसारिक भोगविलास उसे अच्छे न लगते थे।

विवाह के बाद उसने दीक्षा ले ली। तपस्या और धर्मध्यान के साथ साथ दूसरों की वैयावच्च में भी वह बहुत रुचि दिखाने लगी। शुद्धभाव से सेवा में लीन रहने के कारण वह क्षपक श्रेणी में चढ़ी। उसके घातीकर्म नष्ट हो गए।

अपने उपदेशों से भव्यप्राणियों का कल्याण करती हुई महासती पुष्पचूला ने आयुष्य पूरी होने पर मोक्ष प्राप्त किया।

(१५) प्रभावती

विशाला नगरी के स्वामी महाराजा चेटक के सात पुत्रियाँ थीं। सभी पुत्रियाँ गुणवती, शीलवती तथा धर्म में रुचि वाली थीं। उनमें से मृगावती, शिवा, प्रभावती और पद्मावती सोलह सतियों में गिनी गई हैं। इनका नाम मङ्गलमय समझ कर प्रातःकाल जपा जाता है। त्रिशला कुण्डलपुर के महाराज सिद्धार्थ की रानी थी। उन्हीं के गर्भ से चरम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। चेलणा श्रेणिक राजा की रानी थी। उसने अपने उपदेश तथा प्रभाव से श्रेणिक को सम्यग्दृष्टि तथा भगवान् महावीर का परम भक्त बनाया। सातवीं पुत्री का नाम सुज्येष्ठा था। चेलणा की बड़ी बहिन सुज्येष्ठा ने बालब्रह्मचारिणी साध्वी होकर आत्म-कल्याण किया। देश तथा धर्म के नाम को उज्ज्वल करने वाली ऐसी पुत्रियों के कारण चेड़ा महाराज जैन साहित्य में अमर रहेंगे।

प्रभावती का विवाह सिन्धुसौवीर देश के राजा उदयन के साथ हुआ था। उनकी राजधानी वीतभय नगर था। प्रभावती में जन्म से ही धर्म के दृढ़ संस्कार थे। उदयन भी धर्मपरायण राजा था। धर्म तथा न्याय से प्रजा का पालन करते हुए वे अपना जीवन सुख-पूर्वक बिता रहे थे। कुछ समय पश्चात् प्रभावती के अभिचि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचर कर जनता का कल्याण करते हुए वीतभय नगर में पधारे। राजा तथा रानी दोनों दर्शन करने गए। भगवान् का उपदेश सुन कर प्रभावती ने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। दीक्षा की आज्ञा देने से पहले राजा ने रानी से कहा— जिस समय तुम्हें देवलोक प्राप्त हो मुझे प्रतिबोध देने के लिए आना। प्रभावती ने उसकी बात मान कर

दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कठोर तपस्या तथा निर्दोष संयम का पालन करती हुई वह आयुष्य पूरी होने पर काल करके देवलोक में उत्पन्न हुई।

अपने दिए हुए वचन के अनुसार उसने मृत्युलोक में आकर उदयन राजा को प्रतिबोध दिया। राजा ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कठोर तपस्या द्वारा वह राजर्षि हो गया।

यथासमय कर्मों को खपा कर दोनों मोक्ष प्राप्त करेंगे।

(१६) पद्मावती

पद्मावती वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री और चम्पानरेश महाराजा दधिवाहन की रानी थी। दधिवाहन न्यायी, प्रजावत्सल और धार्मिक राजा था। रानी भी उसी के समान गुणों वाली थी। राजा और रानी दोनों मर्यादित भोगों को भोगते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक बार रात्रि के पिछले पहर में रानी ने एक शुभस्वप्न देखा। पूछने पर स्वप्नशास्त्रियों ने बताया कि रानी के गर्भ से किसी प्रतापी पुत्र का जन्म होगा। राजा और रानी दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

रानी ने गर्भ धारण किया। कुछ दिनों बाद उसके मन में विविध प्रकार के दोहद (गर्भिणी की इच्छा) उत्पन्न होने लगे। एक बार रानी की इच्छा हुई— मैं राजा का वेश पहिनूँ। सिर पर मुकुट रक्खूँ। राजा मुझ पर छत्र धारण करे। इस प्रकार सजधज कर मेरी सवारी नगर में से निकले। इसके बाद वन में जाकर क्रीड़ा करूँ।

लज्जा के कारण रानी अपने इस दोहद को प्रकट न कर सकी, किन्तु इच्छा बहुत प्रबल थी इसलिए वह मन ही मन घुलने लगी। उसके चेहरे पर उदासी छा गई। शरीर प्रतिदिन दुर्बल होने लगा।

राजा ने रानी से दुर्बलता का कारण पूछा। रानी ने पहले

तो टालमटोल की किन्तु आग्रह पूर्वक पूछने पर उसने संकुचाते हुए अपने दोहद की बात कह दी।

गर्भ में रहे हुए बालक की इच्छा ही गर्भिणी की इच्छा हुआ करती है। उसी से बालक की रुचि और भविष्य का पता लगाया जा सकता है। पद्मावती के मन में राजा बनने की इच्छा हुई थी। यह जान कर दधिवाहन को बहुत प्रसन्नता हुई। उसे विश्वास हो गया कि पद्मावती के गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक बहुत तेजस्वी और प्रभावशाली होगा।

रानी का दोहद पूरा करने के लिए उसी प्रकार सवारी निकली। रानी राजा के वेश मे हाथी के सिंहासन पर बैठी थी। राजा ने उस पर छत्र धारण कर रक्खा था। नगरी की सारी जनता यह दृश्य देखने के लिए उमड़ रही थी। उसे इस बात का हर्ष था कि उनका भावी राजा बड़ा प्रतापी होने वाला है।

सवारी का हाथी धीरे धीरे नगरी को पार करके वन में आ पहुँचा। उन दिनों वसन्त ऋतु थी। लताएं और वृक्ष फूल, फल तथा कोमल पत्तों से लदे थे। पक्षी मधुर शब्द कर रहे थे। फूलों की मीठी मीठी सुगन्ध आ रही थी। यह दृश्य देख कर हाथी को अपना पुराना घर याद आगया। बन्धन में पड़े रहना उसे अखरने लगा। उसका मन अपने पुराने साथियों से मिलने के लिये व्याकुल हो उठा। अंकुश की उपेक्षा करके वह भागने लगा। महावत ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु हाथी न माना। उसने महावत को नीचे गिरा दिया तथा पहले की अपेक्षा अधिक वेग से दौड़ना शुरू किया। राजा और रानी हाथी की पीठ पर रह गए।

स्वतन्त्रता सभी को प्रिय होती है। उसे प्राप्त करके हाथी प्रसन्न हो रहा था। साथ में उसे भय भी था कि कहीं दुबारा बन्धन में न पड़ जाऊँ इसलिये वह घोर वन की ओर सरपट दौड़ रहा था।

वह जिधर दौड़ रहा था उसी मार्ग में कुछ दूरी पर एक वट का वृक्ष था। राजा ने उसे देख कर रानी से कहा—देखो हाथी उस वृक्ष के नीचे से निकलेगा। जब वह उसके नीचे पहुँचे तुम वृक्ष की डाल पकड़ लेना। मैं भी ऐसा ही करूँगा। ऐसा करने पर हम दोनों इस आपत्ति से बच जाएंगे।

हाथी दौड़ता हुआ वटवृक्ष के नीचे आया। राजा ने शीघ्रता से एक डाल को पकड़ लिया। गर्भवती होने के कारण रानी ऐसा न कर सकी। वह हाथी पर रह गई। राजा वृक्ष से उतर कर अपनी राजधानी में चला गया।

हाथी दौड़ता दौड़ता घने वन में पहुँचा। उसे प्यास लग आई। पानी पीने के लिए वह एक जलाशय में उतरा। उस समय हाथी का होदा एक वृक्ष की शाखा के साथ लग गया। रानी उसे पकड़ कर नीचे उतर आई। हाथी ने पानी पीकर फिर दौड़ना शुरू किया। पद्मावती नीचे बैठ गई। उस समय वह अकेली और असहाय थी। कुछ समय पहले जिसकी आज्ञा प्राप्त करने के लिए हजारों व्यक्ति उत्सुक रहते थे, अब उसकी करुण पुकार को सुनने वाला कोई न था। चारों ओर से सिंह, व्याघ्र वगैरह जंगली प्राणियों के भयङ्कर शब्द सुनाई दे रहे थे। उस निर्जन वन में एक अबला के लिए अपने प्राणों को बचाना बहुत कठिन था। पद्मावती ने अपने जीवन को सन्देह में पड़ा जान कर सागारी संथारा कर लिया। अपने पापों के लिए वह आलोयणा करने लगी –

यदि मैंने इस भव या परभव में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु या बनस्पति काय के जीवों की हिंसा मन, वचन या काया से स्वयं की हो, दूसरे के द्वारा कराई हो, या करने वाले को भला समझा हो तो मेरा वह आरम्भ सम्बन्धी पाप मिथ्या अर्थात् निष्फल होवे। मैं ऐसे कार्य को बुरा मानती हूँ तथा जिन जीवों को मेरे

कारण कष्ट हुआ है उनसे क्षमा मांगती हूँ। इसी प्रकार त्रस अर्थात् बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों की मन, वचन या काया से हिंसा की हो, कराई हो या उसका अनुमोदन किया हो तो मेरा वह पाप मिथ्या होवे। मैं उसके लिए हृदय से पश्चात्ताप करती हूँ। यदि मैंने देवरानी, जेठानी, ननद, भौजाई, सासू, ससुर, जेठ, देवर आदि किसी भी कुटुम्बी को मर्मभेदी वचन कहा हो, उनकी गुप्त बात को प्रकट किया हो, धरोहर रक्खी हुई वस्तु को दबाया हो या और किसी प्रकार से उन्हें कष्ट पहुँचाया हो तो मेरा वह पाप मिथ्या होवे। मैं उनसे बारबार क्षमा माँगती हूँ। यदि मैंने जानते हुए या बिना जाने कभी झूठ बोला हो, चोरी की हो, स्वप्न में भी परपुरुष के लिए बुरी भावना की हो, परिग्रह का अधिक संचय किया हो, धन, धान्य, कुटुम्ब आदि पर ममत्व रक्खा हो तो मेरा वह पाप निष्फल होवे। यदि मैंने धन पाकर गर्व किया हो, किसी की निन्दा या चुगली की हो, इधर उधर बातें बना कर दो व्यक्तियों में झगड़ा कराया हो, किसी पर झूठा कलंक लगाया हो, धर्मकार्य में आलस्य किया हो, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये माया जाल रचा हो, किसी को धोखा दिया हो, सच्चे देव, गुरु तथा धर्म के प्रति अविश्वास किया हो, अधर्म को धर्म समझा हो तो मेरा वह पाप मिथ्या हो। मैं उसके लिए पश्चात्ताप करती हूँ। अपने अपराध के लिए संसार के सभी जीवों से क्षमा माँगती हूँ। संसार के सभी प्राणी मेरे मित्र हैं। मेरी शत्रुता किसी से नहीं है।

इस प्रकार आलोयणा करने से पद्मावती का दुःख कुछ हल्का हो गया। उसे वहीं पर नींद आ गई।

उठने पर पद्मावती ने नगर के लिए मार्ग खोजना शुरू किया। खोजते खोजते वह एक आश्रम में पहुँच गई। आश्रम निवासियों ने उसका अतिथिसत्कार किया। स्वस्थ होने पर उन्होंने उसे नगर

का मार्ग बता दिया।

पास वाले नगर में आकर पद्मावती साध्वियों के उपाश्रय में चली गई। वन्दना नमस्कार करके उनके पास बैठ गई। साध्वियों ने उससे पूछा– बहिन तुम कौन हो? कहाँ से आई हो?

पद्मावती ने उत्तर दिया– मैं एक रास्ता भूली हुई अबला हूँ। कष्ट और आपत्तियों से छुटकारा पाने के लिए आपकी शरण में आई हूँ। पद्मावती ने अपना वास्तविक परिचय देना ठीक न समझा।

साध्वियों ने उसे दुखी देख कर उपदेश देना शुरू किया– बहिन! यह संसार असार है। जो वस्तु पहले सुखमय मालूम पड़ती है वही बाद में दुःखमय हो जाती है। संसार में मालूम पड़ने वाले सुख वास्तविक नहीं हैं। वे नश्वर हैं। क्षणभंगुर हैं। जो कल राजा था वही आज दर दर का भिखारी बना हुआ है। जिस घर में सुबह के समय राग रंग दिखाई देते हैं, शाम को वहीं रुदन सुनाई पड़ता है। यह सब कर्मों की विडम्बना है। संसार की माया है। इसमें फंसा हुआ व्यक्ति सदा दुःख प्राप्त करता है। यदि तुम्हें सम्पूर्ण और शाश्वत सुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो संसार का मोह छोड़ दो। संसार के झगड़ों को छोड़ कर आत्मचिन्तन में लीन हो जाओ।

पद्मावती पर उपदेश का गहरा असर पड़ा। संसार के सारे संबन्ध उसे निःसार मालूम पड़ने लगे। उसने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। साध्वियों ने चतुर्विध संघ की आज्ञा लेकर पद्मावती को दीक्षा दे दी। जिस व्यक्ति का कोई इष्ट सम्बन्धी पास में न हो या जिसके साथ किसी की जान पहिचान न हो उसे दीक्षा देने के लिए संघ की आज्ञा लेना आवश्यक होता है।

पद्मावती आत्मचिन्तन तथा धर्मध्यान में लीन रहने लगी। कुछ दिनों बाद साध्वियों को उसके गर्भ का पता लगा। दीक्षा

के समय इस बात को छिपा रखने के लिए उसे उलहना दिया गया। साध्वियों ने पद्मावती को गुप्त रूप से रख लिया, जिससे धर्म की निन्दा न हो और गर्भ को भी किसी प्रकार का धक्का न पहुँचे।

समय पूरा होने पर पद्मावती ने सुन्दर बालक को जन्म दिया। साध्वियाँ इस बात से असमञ्जस में पड़ गईं। लोकव्यवहार के अनुसार वे बालक को अपने पास नहीं रख सकती थीं किन्तु उस की रक्षा भी आवश्यक थी। दूसरी साध्वियों को इस प्रकार असमञ्जस में देख कर पद्मावती ने कहा— इस विषय में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं सारी व्यवस्था कर लूँगी जिससे लोक निन्दा भी न हो और बालक की रक्षा भी हो जाय।

रात पड़ने पर पद्मावती बालक को लेकर श्मशान में गई। जलती हुई चिता के प्रकाश में उसने बालक को इस तरह रख दिया जिससे आने जाने वाले की दृष्टि उस पर पड़ जाय। स्वयं एक झाड़ी के पीछे छिप कर देखने लगी।

थोड़ी देर बाद वहाँ एक चण्डाल आया। वह श्मशान भूमि का रक्षक था। उसके कोई सन्तान न थी। बालक को देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मन ही मन कहने लगा— मेरे भाग्य से कोई इस बालक को यहाँ छोड़ गया है। मेरे कोई सन्तान नहीं है। आज इस पुत्र की प्राप्ति हुई है। यह कह कर उसने बालक को उठा लिया।

घर जाकर चण्डाल ने बालक अपनी स्त्री को सौंप दिया। साथ में कहा— हमें इस पुत्र की प्राप्ति हुई है। इसे अच्छी तरह पालना। चण्डाल की स्त्री उस सुन्दर बालक को देख कर बहुत प्रसन्न हुई।

पद्मावती चण्डाल के पीछे पीछे गई थी। सारा हाल देख कर उसे सन्तोष हो गया कि अब बालक का भरण पोषण होता रहेगा। वापिस उपाश्रय में आकर वह धर्मध्यान में लीन रहने लगी।

बालक चण्डाल के घर बड़ा होने लगा। उसके शरीर पर प्रायः खुजली चला करती थी। इसलिये वह अपने अंगों को हाथ से खुजलाया करता था। इसी कारण से लोग उसे करकण्डू कहने लगे।

करकण्डू यद्यपि चण्डाल के घर पल रहा था फिर भी उसकी प्रत्येक चेष्टा से स्पष्ट मालूम पड़ता था कि वह भविष्य में राजा बनेगा। खेलते समय वह स्वयं राजा बनता। अपने किसी साथी को सिपाही बनाता और किसी को चोर। फिर उनका न्याय करता। अपराधी को सजा देता। इस प्रकार उसके प्रत्येक कार्य राजा के समान होते थे। बड़ा होने पर उसे श्मशान में रक्षा करने का कार्य सौंपा गया।

एक बार करकण्डू श्मशान में पहरा दे रहा था। उसी समय उधर से दो साधु निकले। आपस में बातचीत करते समय एक साधु के मुँह से निकला—

बाँस की इस झाड़ी में एक सात गाँठ वाली लकड़ी है। वह जिसे प्राप्त होगी उसे राज्य मिलेगा।

इस बात को करकण्डू तथा रास्ते चलते हुए एक ब्राह्मण ने सुना। दोनों लकड़ी लेने चले। दोनों ने उसे एक साथ छूआ। ब्राह्मण कहने लगा— इस लकड़ी पर मेरा अधिकार है और करकण्डू कहने लगा मेरा। दोनों में झगड़ा खड़ा होगया। कोई अपने अधिकार को छोड़ना नहीं चाहता था। बात बढ़ने पर न्यायालय तक पहुँची। ब्राह्मण और करकण्डू दोनों दरबार में उपस्थित हुए। दधिवाहन राजा न्याय करने वाला था। करकण्डू को देख कर दरबार के सभी लोग चकित रह गए। चण्डाल के पुत्र में इतना तेज और ओज देख कर वे आश्चर्य करने लगे।

करकण्डू ने अपने पक्ष का समर्थन करते हुए कहा— महाराज! मैं श्मशान का राजा हूँ। जिस प्रकार आपके राज्य में उत्पन्न हुई

सभी वस्तुओं पर आपका अधिकार है उसी प्रकार श्मशान में उत्पन्न हुई सभी वस्तुओं पर मेरा अधिकार है।

करकण्डू की युक्ति और साहस भरी बात को सुन कर दधिवाहन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मुस्कराते हुए कहा—करकण्डू! इस लकड़ी पर मैं तुम्हारा अधिकार मानता हूँ। श्मशान की सीमा में उत्पन्न होने के कारण यह तुम्हारी है। इसके प्रभाव से जब तुम्हें राज्य प्राप्त हो जाय तो एक गाँव इस ब्राह्मण को भी दे देना।

एक बार करकण्डू उस लकड़ी को लेकर कंचनपुर की ओर जा रहा था। उसी समय वहाँ के राजा का देहान्त होगया। राजा के न कोई पुत्र था और न उत्तराधिकारी। मन्त्रियों को इस बात की चिन्ता हुई कि राजा किसे बनाया जाय। सब ने इकट्ठे होकर निश्चय किया कि राज्य की श्रेष्ठ हस्तिनी के सूँड में हार डाल कर उसे नगर में घुमाया जाय। वह जिसके गले में हार डाल दे उसी को राजा बना देना चाहिए। निश्चय के अनुसार हथिनी घूमने लगी। उसके सूंड में हार था। पीछे पीछे राजपुरुष चल रहे थे। हथिनी चक्कर लगाती हुई नगर के दूसरे द्वार पर पहुँची। उसी समय उस द्वार से करकण्डू ने प्रवेश किया। हथिनी ने माला उस के गले में डाल दी।

करकण्डू कंचनपुर का राजा बन गया। ब्राह्मण को इस बात का पता लगा। उसने करकण्डू के पास आकर गाँव मांगा। करकण्डू ने पूछा—तुम किस के राज्य में रहते हो?

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—राजा दधिवाहन के।

करकण्डू ने दधिवाहन राजा के नाम एक आज्ञापत्र लिखा कि इस ब्राह्मण को एक गाँव जागीरी में दो।

ब्राह्मण पत्र लेकर दधिवाहन के पास आया। उसे देख कर दधिवाहन कुपित हो गया। उसने ब्राह्मण से कहा—जाओ! कर-

कण्डू से कह दो कि तुम्हारा राज्य छीन कर मैं ब्राह्मण को गाँव दूँगा। साथ ही उसने लड़ाई के लिये तैयारी शुरू कर दी।

ब्राह्मण ने जाकर सारी बात करकण्डू से कही। उसने भी युद्ध की तैयारी की और चम्पा पर चढ़ाई कर दी।

बाप और बेटा दोनों एक दूसरे के शत्रु बन कर रणक्षेत्र में आ डटे। दूसरे दिन सुबह ही युद्ध शुरू होने वाला था।

पद्मावती को इस बात का पता चला। एक मामूली सी बात पर पिता पुत्र के युद्ध और उसके द्वारा होने वाले नरसंहार की कल्पना से उसे बहुत दुःख हुआ।

वह करकण्डू के पास गई। सिपाहियों ने जाकर उसे खबर दी– महाराज! कोई साध्वी आप से मिलना चाहती है। करकण्डू ने कहा–उसे आने दो।

पद्मावती ने आते ही कहा–बेटा!

करकण्डू आश्चर्य में पड़ गया। उसे क्या मालूम था कि यही साध्वी उस की मां है।

पद्मावती ने फिर कहा–करकण्डू! मैं तुम्हारी मां हूँ। दधिवाहन राजा तुम्हारा पिता है। ऐसा कह कर पद्मावती ने उसे शुरू से लेकर सारा हाल सुनाया। उसे माता मान कर करकण्डू ने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। युद्ध का विचार छोड़ कर वह पिता से मिलने चला।

पद्मावती शीघ्रता पूर्वक चम्पापुरी में गई। एक साध्वी को आते देख कर नगरी का दरवाजा खुला। पद्मावती सीधी दधिवाहन के पास पहुँची और सारा हाल कहा।

'करकण्डू मेरा पुत्र है' यह जान कर दधिवाहन को बहुत हर्ष हुआ। उसी समय उन्हीं वस्त्रों से वह करकण्डू से मिलने चला। करकण्डू भी पिता से मिलने के लिए आ रहा था। मार्ग में ही दोनों मिल गए। करकण्डू दधिवाहन के पैरों में गिर पड़ा और अपने